UNIVERSAL LIBRARY

OU_180723

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 V65S Accession No. G.H. 1849

Author विद्यालंकार, सत्यकाम

Title श्यामा.

This book should be returned on or before the date last marked below.

सोमा

सोमा

सत्यकाम विद्यालंकार

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य : साढ़े तीन रुपये (३.५० नये पैसे)

प्रथम संस्करण : फरवरी १९५७

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली.

मुद्रक : युगान्तर प्रेस, डफ़रिन पुल, दिल्ली.

सोमा

दिल्ली के वकील लाला नीलकंठ जी ने बेला रोड पर बँगला बनवाया तो केवल अपने ही लिये था, लेकिन एक महीने बाद ही कुछ ऐसी बात हो गयी कि उसमें पाँच व्यक्ति रहने लगे। बात कोई बड़ी नहीं हुई थी। महज, उनकी पत्नी ने आत्महत्या कर ली थी। कोई विष नहीं खाया, आग में नहीं कूदी, जमुना में नहीं डूबी, बस सेफ्टी रेजर के ब्लेड से गले की नाड़ी काट ली। मानो वह प्रतीक्षा ही कर रही थी कि कब नया बँगला तैयार हो और वह उसे अपनी अमर यादगार बनाकर विदा ले।

वकील साहब पत्नी की इस अति साधारण मरण-शैली से एकदम स्तम्भित रह गये। उसके शोक में आँसू बहाने के स्थान पर उन्हें अपनी प्रतिष्ठा को अकलंक रखने का कर्तव्य पूरा करना पड़ा।

दिल्ली के सभी डाक्टर परिचित थे। उनके इशारे पर वह जीवित व्यक्ति के लिये भी मृत्यु का प्रमाण-पत्र दे सकते थे। श्रीमती नीलकंठ के लिये 'हृदय की गति के अचानक रुक जाने से मृत्यु हुई,' यह प्रमाण-पत्र देने में उन्हें विशेष व्यवस्था नहीं करनी पड़ी।

वकील साहब कलंक-कालिमा से बच गये।

लेकिन इतने से ही समस्या हल न हुई।

उस समय उनका पुत्र अक्षयकुमार, जिसे सब कुमार कहते थे, मात्र दस वर्ष का बालक था। वकील साहब के सामने उसके पालन-पोषण और देख-रेख की समस्या खड़ी हो गयी।

वकील साहब को समाज-सेवा का व्यसन था। अभी तक प्रायः सभी संस्थाओं के वार्षिक स्नेह-सम्मेलनों का प्रधान अतिथि बन चुके

थे। घर के योग-क्षेम का अवसर मिलता तो उपेक्षिता पत्नी ही क्यों सदा के लिये विदा होती ! पत्नी के पीछे पुत्र भी उसी रास्ते न चल दे, इसलिये उन्हें उपाय की चिन्ता पड़ी।

इसी उपाय-चिन्तन के परिणामस्वरूप मुंशी बंशीलाल जी अपनी पत्नी पार्वती और गोद की एक छोटी लड़की सोमा सहित बंगले के 'आउट हाउस' (पार्श्व-घर) में आ बसे थे।

कोई और बात होती तो मुंशी जी वकील साहब की परछाई के पास भी न आते। उनकी बेरुखी जग-प्रसिद्ध थी। लेकिन आज मुंशी जी विधुरावस्था-प्राप्त नीलकंठ जी की बात न टाल सके।

दो परिवारों के इस संगम ने कुछ दिनों के लिये बंगला नं० ५५ को स्वर्ग बना दिया। मुंशी बंशीलाल जी देवता पुरुष थे। वह जहाँ जाते स्वर्ग बन जाता था।

वकील साहब को तो अपने काम और दिल्ली की सामाजिक प्रवृत्तियों से अवकाश ही नहीं मिलता था, बच्चे की देख-भाल कहाँ से करते— मुंशी जी ही कुमार को जमुना में तैरना सिखाते, दसहरा-दिवाली के मेलों में ले जाते और कभी-कभी चांदनी चौक में घंटाघर वाले की कुलफी-फलूदा भी खिला लाते। उनकी एक बगल कुमार होता और दूसरी ओर उनकी अपनी लड़की सोमा।

दस वर्ष इसी तरह निकल गये।

इन दस वर्षों में उस बँगले में रहने वाले पाँच व्यक्तियों में से तीन में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। वकील साहब उसी तरह सिर पर पगड़ी बाँध, आँखों पर ऐनक लगा, लम्बा कोट, तंग पाजामा, पंजाबी जूती पहनकर आठ बजे ही बैठक में चले जाते, दस बजे कचहरी जाते और कचहरी से किसी न किसी सभा में प्रधान बनकर नेतागीरी निभाते थे। मुंशी जी और उनकी पत्नी पार्वती मिलकर वकील साहब के घर-बाहर के कामों की व्यवस्था देखते।

दोनों में एक अन्तर और भी आ गया था। पार्वती इस बीच और भी तीन बच्चों की माँ बन गयी थी।

अक्षय और सोमा बढ़कर तरुण हो गये थे।

जेठ का महीना हो या फागुन का, सोमा के चेहरे पर हर समय अबीर-गुलाल की अरुणाई छाई रहती। उसकी आकर्णमूल फैली आँखों में जमुना-जल की नीलिमा दिन-प्रतिदिन गहरी होती जा रही थी। पार्वती अपनी लाड़ली के इस निखार पर फूली नहीं समाती थी, लेकिन मुंशी जी कभी-कभी उसे देखकर गहरा साँस छोड़ देते थे।

दस बरस से सोमा के साथ-साथ खेलने वाला अक्षय भी जब भर नज़र सोमा का लावण्य उषा की गुलाबी धूप में चमकता देखता तो खोया-सा रह जाता।

किन्तु दूसरे ही क्षण उसे स्मरण हो आता, वह दिल्ली के प्रतिष्ठित वकील का लड़का है, सोमा उसके मुंशी की लड़की है। सोमा को इस वैषम्य का कुछ भान नहीं था। वह सारे घर में निर्बाध रहती थी। कभी अपने कमरे की चटाई पर बैठ जाती तो कभी अक्षय के कमरे में बिछे कालीन पर। उसके मन में कोई गाँठ नहीं थी। समूचे घर को अपना मानती और सबसे एक-सा प्यार करती।

वह जब चाहती वकील साहब के पास बेरोक-टोक चली जाती। पत्थर-दिल वकील साहब भी उसके आगे मोम बन जाते थे।

अक्षय का मन सोमा को देख-देखकर अजीब उलझनों में उलझता जाता था। उमंग में आकर जब भी वह मुक्त उल्लास प्रकट करने का मन बनाता, उसी समय पिता के कठोर अनुशासन की बात याद आ जाती। उनकी पैनी आँखों का एक इशारा ही उसे विमूढ़ करने को काफ़ी होता। पिता जी के लौह-शासन से कुंठित होकर भी वह विद्रोह नहीं कर पाता था। सोमा के प्रति अनुरक्त होते हुए भी वह बुझा-बुझा-सा रहता।

इस अन्तर्द्वन्द्व ने उसके समूचे व्यक्तित्व को शिथिल कर दिया। उसका उत्साह मन्द पड़ गया। उसका अपना ही मार्ग उसकी आँखों के सामने स्पष्ट नहीं होता था।

एक घना कुहरा उसे सदा दुविधा में डाले रहता था। जब भी वह अपने मन से कोई काम करने की सोचता, अपने को कई मजबूरियों में जकड़ा पाता।

इस दुविधा से उसे मुक्त करने का काम भी सोमा ही करती थी। उलझनों के केन्द्र में होते हुए भी वह उनसे मुक्त-सी होकर हँसती-खेलती रहती थी। अक्षय सोमा के इस ओज पर भी मुग्ध था। सोमा का यह आचरण उसे नया बल देता था। इससे सोमा उसके लिये नवीन स्फूर्ति का स्रोत बन गयी थी।

इसी कारण जब भी सोमा कोई प्रस्ताव करती तो वह 'ना' नहीं कर पाता था, अनिच्छा होते हुए भी उसका कहना उसे मानना ही पड़ता था।

उस दिन शाम को हल्की-सी बारिश हुई, बेला रोड के घने कुंज बरसात की पहली फुहार में भीगकर खिल-से गये थे।

मौसम की इस मोहकता ने सोमा को अक्षय के साथ बाहर जाने के लिये बाध्य कर दिया। यह सत्य था लेकिन इतना ही सम्पूर्ण सत्य नहीं था। कुछ दिनों से उसके मन में अजीब-सी उथल-पुथल मची हुई थी। न जाने कैसे असंगत-से प्रश्न उसके मन में उठा करते और उन प्रश्नों से वह सिहर उठती। एक अस्पष्ट-सा कोहरा उसकी अन्तर्दृष्टि को धुंधला बना रहा था। वह ऐसी संदिग्ध और डूबती-उतराती लहरों के साथ डूबने की आदी नहीं थी। वह तेज़ से तेज़ वेग वाली लहरों को पार करने में समर्थ थी, और किसी भी रहस्य के अन्धेरे को भेदकर सीधे प्रकाश में आने का साहस उसमें था।

इसलिये उसने आज निश्चय कर लिया था कि वह आज अवश्य

अपने मन में उस प्रश्न का अक्षय से स्पष्ट उत्तर पा लेगी। प्राय: जो व्यक्ति वर्षों तक साथ रहते है वे एक दूसरे के संकेतों से अभिज्ञ होते हैं, किन्तु अक्षय के आचरण में कुछ विचित्र विरोधी प्रवृत्तियाँ नजर आ रही थीं, जिन्हें सोमा पूरी तरह समझ नहीं पाती थी। आज सोमा ने उस अन्धेरे को भेदकर सचाई जान लेने का निश्चय कर लिया।

मन ही मन कुछ सोचकर उसने अक्षय से आग्रह किया : "चलो घूमने चलें।" अक्षय जानता था कि पिता जी के बाहर जाने का समय हो रहा है लेकिन सोमा की बात टालना भी असम्भव था।

"आठ बजे तक तो हम लौट ही आयेंगे न ?" कहकर अक्षय ने ड्राइवर से गाड़ी निकलवाई। सोमा चट से ड्राइवर की सीट पर बैठ गयी और अक्षय को पास में बैठने का इशारा किया। ड्राइवर के कुछ कहने से पहले ही उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी, कुछ दूर बाद गाड़ी पचास मील के वेग से भाग रही थी।

दो-तीन जगह टक्कर लगते-लगते बची। अक्षय ने डरते-डरते कहा : "इतनी तेज न चलाओ।"

सोमा ने गाड़ी और भी तेज़ करके अगले मोड़ पर गाड़ी का चक्कर पूरा घुमाते हुए लापरवाही से कहा : "क्यों, तेज़ क्यों न चलाऊँ, गाड़ी होती ही तेज़ चलाने के लिये है।"

अक्षय ने एक ओर आधी झुकी हुई गाड़ी में अपने को सँभालते हुए कहा : "यह तो ठीक है लेकिन आज सड़क गीली है, गाड़ी फिसल न जाये।"

सोमा ने स्टीयरिंग के चक्र को मजबूत उंगलियों से दबाते हुए जवाब दिया : "चलाने वाले के हाथ मजबूत हों तो गाड़ी फिसला नहीं करती कुमार।"

अक्षय चुप रह गया। वह बड़े हल्के हाथों से गाड़ी चलाता था। खास तौर पर रिज की पहाड़ी के घुमावदार रास्तों में तो वह कभी दस

मील से अधिक नहीं ले गया था। सोमा ने पल भर में सारा रास्ता तय कर लिया और गाड़ी फ्लैग स्टाफ के चौराहे पर खड़ी कर दी।

फ्लैग स्टाफ पर उस समय अधिक भीड़ नहीं थी। बड़े-बूढ़ों की टोलियाँ रामायण-महाभारत की चर्चा करके लौट चुकी थीं। बच्चों के साथ आयी हुई उपचारिकाएँ भी अन्धेरा घना होने से पहले घरों को वापस जा चुकी थीं। दो-चार लीला-प्रेमी युगल ही स्टाफ की मुँडेर पर बैठे थे। जैसे-जैसे अन्धेरा घना होता जाता था उन युगल-प्रेमियों की दूरी भी कम होती जाती थी।

बहुत-सी इधर-उधर की बातें करने के बाद सोमा ने अक्षय से कहा : "तुम पिता जी से बहुत डरते हो।"

"तुम भी तो डरती हो", अक्षय ने जवाब दिया।

"मैं नहीं डरती", सोमा बोली—"डरे वह जो बुरा काम करे।"

"काम बुरा है या नहीं, इसका निर्णय भी तो आदमी के अपने हाथ में नहीं होता," अक्षय ने जरा रुक-रुककर कहा।

"जो आदमी इसका निर्णय अपने हाथ में न रखे वह आज़ादी से कुछ भी नहीं कर सकता। काम तभी पूरा होता है जब करने वाला उसे अपनी इच्छा से करता है। बेमन से किया हुआ काम न तो पूरा ही होता है और न करने वाले को संतोष होता है।"

अक्षय ने कहा : "तुम क्या सब काम अपनी ही इच्छा से करती हो? माँ-बाप की इच्छा का ख्याल नहीं रखतीं?"

"माँ-बाप भी तो मेरी खुशी का ख्याल रखते हैं। वह ताऊ जी की तरह नहीं हैं।"

"तुम ठीक कहती हो", अक्षय ने कहा।

"ताऊ जी तो बड़े सख्त हैं, बोलते ज्यादा नहीं लेकिन उनकी चुप्पी बोलने से भी ज्यादा डरावनी है।"

अक्षय : "पिता जी बड़े आदमी हैं, उनको दुनिया मानती है।"

सोमा : "तभी उन्हें सब काम अपनी ही इच्छा से करने की आदत हो गयी है।"

अक्षय ने इसका समर्थन किया।

कुछ देर की चुप्पी के बाद सोमा ने कहा : "एक अजीब बात सुनी थी। एक दिन पिता जी बात-बात में कह गये थे कि ताई जी की मृत्यु बीमारी से नहीं हुई, बल्कि उन्होंने ताऊ जी के व्यवहार से तंग आकर आत्मघात कर लिया था।"

अक्षय के लिये यह बात नयी थी। वह चौंक-सा पड़ा, बोला : "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं पिता जी से पूछूंगा।"

सोमा ने कहा : "नहीं कुमार, ऐसा मत कर बैठना। नहीं तो घर में रहना कठिन हो जायेगा। ताऊ जी को नाराज़ करना ठीक नहीं।"

अक्षय सोमा की इस बात से इतना विचलित हो गया कि सोमा को यह समझ में नहीं आया, अपने मन की बात उससे कहे कैसे। अचानक ही अक्षय की दृष्टि सामने चली गई।

उनसे कुछ दूरी पर ही एक तरुण-युगल बैठा था। वे आपस में क्या बातें कर रहे थे और किस व्यापार में तल्लीन थे, यह तो उस अन्धेरे में कुछ सूझता नहीं था लेकिन अक्षय ने यह अवश्य देखा कि तरुणी का सिर युवक के कंधे का सहारा ले रहा था।

मुख मोड़ा तो उसने एक बात और देखी। सोमा के चेहरे को संध्या के काले कुहरे ने घेर लिया था और उसके सिर के बाल उड़-उड़-कर उसकी बड़ी-बड़ी आँखों के आगे मँडरा रहे थे। अक्षय ने यह भी देखा कि सोमा उन लहराती लटों को हटाने की कोशिश नहीं कर रही थी। और पीछे से उसकी बड़ी-बड़ी आँखें एकटक उसे देख रही थीं।

कल्पना में ही उसने अनुभव किया कि बिखरे केशों वाला सोमा का सिर उसके कंधों का सहारा लेने के लिये झुक रहा है, झुकता जा रहा है।

थी तो यह कोरी कल्पना, लेकिन, इस कल्पना से ही अक्षय विचलित-सा हो गया। उस समय उसके मन में कई लहरें चल रही थीं। सोमा को उसने सदा स्वस्थ और सतेज देखा था। उसकी साफ खरी बातें उसके डगमगाते मन को स्थिर बनाया करती थीं। सोमा के स्वर में निश्चयात्मकता की जो मुहर लगी होती थी वह अक्षय को बल देती। उसके चेहरे पर जो पांशुवर्ण आभा हर समय चमकती रहती थी और उसकी आँखों में शरत् की स्वच्छ नीलिमा का जो आभास मिलता था, वह अक्षय को स्वस्थ एवं प्रशान्त बनाने के लिये भारी वरदान होता था।

लेकिन अक्षय सोमा के उसी रूप को देखने का अभ्यासी था। वह यह कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था कि सोमा किसीके लिये झुक सकती है या कोमल होकर ढल सकती है। इसकी कल्पना से ही वह विमूढ़ बन जाता था।

सोमा की आज की बातों में उसे थोड़ी कोमलता, कुछ अधिक लोच और विनय का भाव नजर आया। मानो वह किसी फिसलनी जगह पर कदम रखकर ही डगमगा रही थी।

इसीलिये वह और अधिक अपने को सँभाल नहीं सका।

"चलो, अब अन्धेरा हो गया है।" कहने के साथ ही वह झटके से उठकर खड़ा हो गया। और सोमा के उठने की प्रतीक्षा करने लगा।

सोमा नहीं उठी। अभी तो उसका प्रश्न ओठों तक भी नहीं आया था। आज वह उसका उत्तर लेने के निश्चय से ही आयी थी और इतनी जल्दी संकल्प-च्युत होने की उसकी आदत नहीं थी।

अक्षय ने फिर उठने के लिये कहा लेकिन वह अनसुनी बैठी रही।

अक्षय में यह साहस नहीं था कि वह हाथ पकड़कर सोमा को उठा देता, और सोमा में इतनी निरभिमानता नहीं थी कि वह अक्षय से कुछ देर और बैठने के लिये अनुनय-विनय करती। कुछ देर इसी खामोशी में मानसिक द्वन्द्व चलता रहा।

अक्षय को ही हार माननी पड़ी।

वह सोमा के पास बैठ गया।

सोमा के मन में अनेक प्रश्न उठ रहे थे। उसे पता था कि अक्षय उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकेगा। कुछ प्रश्न सोमा की सम्भावित गौरव-गरिमा को उपहासास्पद भी बना सकते थे। इसलिये उसने उन सबको अन्तर्मन की पिछली तहों में दबाकर इतना ही कहा :

"तुम थोड़ा और बहादुर होते तो कितने अच्छे हो जाते।"

अक्षय के फिर से बैठ जाने के बाद सोमा का पूर्व प्रताड़ित मन पुरस्कृत हो चुका था, इसलिये अब विजित भावना से उठकर चलने में उसे कोई आपत्ति नहीं थी।

अक्षय के बैठते ही वह उठ बैठी। अक्षय हैरान था कि आज सोमा ऐसा व्यवहार क्यों कर रही थी।

वहाँ से उठकर सोमा कार में जा बैठी। अक्षय एक मिनट तो खोया-सा बैठा रहा लेकिन फिर जैसे किसीने उसे पकड़कर खड़ा कर दिया हो, वह उठा और कार में सोमा के साथ वाली सीट पर चुपचाप बैठ गया।

कहने को उसके मन में भी बहुत था मगर उसके ओठ ऐसे सिल गये थे कि खुलना ही भूल चुके थे। मुस्कराहट तो उन होठों पर केवल तभी आती थी जब सोमा की हँसी का प्रकाश उस तक पहुँचता था। नहीं तो न वह कभी मुक्त भाव से बोलता था, न हँसता था।

अक्षय के बैठते ही सोमा ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। फ्लैग स्टाफ से उनका घर ज्यादा दूर नहीं था लेकिन सोमा ने उल्टा रास्ता पकड़ा। वेग-मर्यादाओं पर तो उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया था और आज तो उसके दिल के भीतर हल्की-सी आँधी भी चल रही थी। गाड़ी को भी वह उसी वेग से ले चली। उसके दिमाग से यह बात बिल्कुल उतर गयी थी

कि आठ बजने में अब देर नहीं है और ताऊ जी रोज की तरह आठ बजे बाहर जाने को गाड़ी की इन्तजार कर रहे होंगे।

◇ ◇ ◇

इधर सोमा गाड़ी को अलीपुर रोड पर साठ मील की रफ्तार से भगा रही थी और उधर लाला नील ठ जी अपने बँगले के बरामदे में उतनी ही रफ्तार से चक्कर काट रहे थे। आपका यह नित्य का नियम था कि हाथ में छड़ी सँभाल घर से बाहर चले जाते थे। ड्राइवर ठीक समय पर गाड़ी ले आता था। आज तक यह किसीको मालूम नहीं हुआ था कि वे रोज ही आठ बजे किस अत्यावश्यक कार्य पर बाहर चले जाते थे। स्वयं मुंशी जी भी इस नियमित निष्क्रमण का रहस्य नहीं जान पाये थे। पूछने का साहस भी किसीको नहीं होता था।

आज अपने नित्य-प्रति के परिधान से सुसज्जित होकर वकील साहब जब गाड़ी की आशा से बाहर आये तो गाड़ी नहीं मिली।

आठ बजकर पन्द्रह मिनट भी हो गये और गाड़ी न आयी तो वकील साहब के क्रोध का पारा चढ़ने लगा। क्रोध आते ही उनकी आँखों के ऊपर एक काली-सी छाया अंकित हो जाती थी। छोटे-छोटे नुकीले कड़े बालों की मूँछों वाले ओंठ फड़फड़ा उठते थे। अब तक वह बँगले के सामने की सडक पर कई चक्कर लगा चुके थे। सड़क पर लाल कंकड़ कुटे हुए थे। ऐसा कोई कंकड़ न होगा जो उनकी नुकीली जूती की ठोकरों से बचा हो।

पाँच मिनट और बीत गये।

तब भी कोई न आया तो उन्होंने ड्राइवर को आवाज दी। ड्राइवर ने जब बताया कि गाड़ी अक्षय बाबू ले गये हैं तो उन्होंने एक सवाल और किया : "वह अकेला था या साथ में कोई और भी था ?"

ड्राइवर चतुर था। "छोटे बाबू अकेले ही थे।" हकलाते हुए उसने उत्तर दिया।

ड्राइवर से कुछ समाधान न पाकर वे मुंशी जी के कमरे की ओर बढ़े। मुंशी जी उसी समय बाहर से आये थे। उन्हें इस सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं था। वकील साहब ने पूछा : "अक्षय कहाँ गया है ?" तो उन्होंने सहज भाव से कह दिया कि "मैं भी अभी आया हूँ।"

"बड़ी देर में आये आप भी" वकील साहब ने उन्हें भी अपराधी बनाते हुए पूछा।

हँसी में टालते हुए मुंशी जी बोले : "हाँ, आज देर हो गयी। सोमा कब से जिद कर रही थी। उसके लिये सितार लेने बाजार चला गया था।" कहकर मुंशी जी ने सितार की ओर संकेत किया।

वकील साहब ने सितार की ओर आँख भी न उठायी। उधर से पीठ फेर ली, मानो वह सितार न होकर शराब की बोतल हो।

सामाजिक दृष्टि से वकील साहब का पुष्ट मत था कि संगीत मन को निर्बल बनाता है और उसमें वासना के विष-बीज बोता है।

सितार के प्रसंग में सोमा का नाम आया तो वकाल साहब चारों ओर देखते हुए पूछ बैठे : "सोमा कहाँ है ?"

मशहूर था कि वकील साहब अपनी पैनी आँखों से पत्थर और लोहे के पार भी देख सकते थे। आकाश में उड़ता परिन्दा भी उनकी आँख के निशाने से बच नहीं पाता था, ऐसी लक्ष्य-वेधी दृष्टि थी उनकी।

प्रश्न पूछने के साथ हा उन्हें अन्तर्ज्ञान हो चुका था कि सोमा उस घर में नहीं है। उनकी पारदर्शिनी आँखों ने परोक्ष की यह बात भी भाँप ली थी कि अक्षय और सोमा दोनों उनकी गाड़ी लेकर सैर करने निकल गये हैं और सुहावनी साँझ का आनन्द ले रहे हैं।

मुंशी जी से उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वकील साहब तमतमाते हुए बाहर निकल गये। उनके ओठ फड़क रहे थे और ललाट पर घनी

काली त्योरियाँ उभर आयी थीं। मुंशी जी को यदि उनकी सदा धीर-शांत रहने वाली पत्नी पार्वती पीछे से आकर सहारा न देती तो वे अवश्य पास ही पड़े तख्तपोश पर धड़ाम से गिर पड़ते।

बाहर आकर वकील साहब ने ड्राइवर को टैक्सी लेने भेजा। टैक्सी आते ही वे चुपचाप उस कार्य के लिये चले गये। जिसे वह अत्यावश्यक कार्य कहा करते थे और जिसके सम्बन्ध में घरवालों को यही मालूम था कि कभी-कभी वे सार्वजनिक सभाओं में मुख्य अतिथि बनकर जाते थे। समय के वे बड़े पाबन्द थे, चाहे उन्हें किसी सभा में जाना हो या महफिल में, पहुँचते समय पर ही थे।

उनके जाने के कुछ देर बाद अक्षय और सोमा की गाड़ी आयी। अक्षय ने आते ही पूछा : "वकील साहब हैं ?"

ड्राइवर ने कहा : "नहीं, वे टैक्सी करके चले गये।"

समय पर गाड़ी न मिलने के कारण पिता जी ने कितनी रौद्र मूर्ति बनायी होगी, इसका अनुमान अक्षय खूब लगा सकता था। घर भर में तूफान के बाद आया हुआ डरावना सन्नाटा छाया हुआ था। सबके चेहरों पर चिन्ता और तनाव की रूखी छाया खिंची हुई थी। अक्षय सहमे हुए दिल से भीतर गया और आने वाले संकट से त्राण पाने का उपाय सोचते-सोचते बिस्तर पर लेट गया।

सोमा ने भी पिता जी को बहुत उदास पाया। सोमा को देखते ही उन्हें सदा की तरह खुशी हुई लेकिन अन्दर की चिन्ता ने प्रसन्नता की सहज अभिव्यक्ति में बाधा डाल दी। वे इतने उत्साह से सोमा का स्वागत न कर सके जितना रोज करते थे। सोमा के मन पर भी आघात पहुँचा, किन्तु इससे पहले कि वह इन आशंकाओं में उलझती, उसकी दृष्टि पास ही रखे हुई सितार पर पड़ी। उसे देखते ही वह सब भूलकर सितार के तारों को झनझनाने लगी।

बड़ी रात बीते तक सोमा सितार की तारों से खेलती रही। न उसे खाने की सुधि थी, न सोने की।

उधर अक्षय की आँखों में नींद कहाँ। पिता जी के दुर्वासा रूप की कल्पना कर-कर के उसे पसीना छूट रहा था। जी चाहता था यह रात इतनी लम्बी हो जाय कि उजाला कभी न हो। लेकिन दीवार पर टँगी घड़ी की टिक-टिक करती आगे बढ़ने वाली सूइयाँ हर मिनट पर यह चेतावनी दे रही थीं कि रात जरूर बीतेगी और सुबह का लाल सूरज धरती को तपाने के लिये अवश्य आयेगा।

वह रात प्रायः सभी ने करवटें बदलते बितायी। सभी एक दूसरे से कुछ कहना चाहते थे लेकिन पृष्ठभूमि की रेखाएँ इतनी अस्पष्ट थीं की पूरी बात कहने का प्रारम्भिक सूत्र ही नहीं मिलता था। सारे वातावरण में एक घुटन-सा छाया हुआ था। सब अनुभव करते थे कि इस उलझन को शीघ्र ही सुलझाना पड़ेगा, नहीं तो उस घर में सबका एक साथ रहते हुए एक दिन भी कटना मुश्किल हो जायेगा।

◇ ◇ ◇

मुंशी जी ने प्रस्तावना करने का विचार किया।

वह रात सभी ने बड़ी बेचैनी से बिताई। सबसे ज्यादा परेशानी सोमा के माता-पिता को थी। उन्हें मालूम था वकील साहब अक्षय और सोमा के मेल-जोल पर कड़ी निगरानी रखते थे। उनका इस तरह घर से बाहर जाना उन्हें पसन्द नहीं था। वह कभी उन्हें क्षमा नहीं करेंगे।

इससे पूर्व कि वह कुछ कहें, उन्हें कुछ उपाय ढूँढ निकालना था।

तभी सुबह के धुंधलके से पूर्व सोमा की माँ पार्वती ने मुंशी जी से कहा : "सोमा की बावत अब कुछ जल्दी ही सोचना होगा।"

मुंशी जी ने शांति से उत्तर दिया : "सोचेंगे, कुछ तो सोचना ही होगा।"

"कोई अच्छा-सा घर देखो।" पार्वती ने कहा।

"घर नहीं, मैं तो लड़का देखने की बात कर रहा था।" मुंशी जी बोले।

"अच्छे घराने का लड़का ही तो अच्छा होगा।" पार्वती ने कहा।

"घराना कैसा भी हो, लड़का नेक, ईमानदार और मेहनती होना चाहिये।" मुंशी जी ने मानो फैसला देते हुए उत्तर दिया।

"घराना भी बड़ा हो तो अच्छा है।"

"बड़े घर की उलझनें भी बड़ी होती हैं...वहाँ सुख नहीं होता।" मुंशी जी ने ऐसे कहा जैसे वह अपने अनुभव की बात कह रहे हों।

"उलझनें कहाँ नहीं होतीं ? आप तो बस टालने को ही ऐसा कहा करते हैं।" सोमा की माँ ने चाय की प्याली सामने रखते हुए कहा।

मुंशी जी ने चाय की प्याली से एक घूंट पीकर नयी ताजगी के साथ कहा : "पार्वती ! सोमा की शादी जरूर अच्छे घर में होगी, भगवान ने उसे सब कुछ दिया है। उसके पास रूप, शील, सब है। हो भी क्यों न ? आखिर तुम्हारी बेटी है ?"

अपने लज्जारक्त मुख को घूंघट से आधा ढँकते हुए पार्वती ने कहा : "वकीलों के पास रहते-रहते तुम भी झूठ-सच गढ़ने में बड़े चतुर हो गये हो।"

मुंशी जी हँस पड़े, बोले : "खैर यही सही। यह तो सच ही है कि सोमा लाखों में एक है। उसके विवाह का प्रश्न कोई टेढ़ा नहीं है।"

पार्वती : "टेढ़ा नहीं तो बहुत सीधा भी नहीं।"

"मैं जानता हूँ···जो तुम कहना चाहती हो।"

"फिर जो करना है, कर क्यों नहीं देते ?"

"यह हमारे हाथ की बात नहीं है।"

"क्यों भला ?" पार्वती ने जरा कुढ़कर पूछा। मुंशी जी ने शांत स्थिर स्वर में कहा :

"पास-पास घर होने से ही तो कोई किसीके निकट नहीं हो जाता।" पार्वती ने दाँव बदला : "लेकिन वे तो आपके मित्र भी हैं।"

मुंशी जी और सतर्क हो गये : "मित्र ही नहीं, बड़े भाई की तरह हैं।"

पार्वती : "फिर आपको संदेह क्यों है ?"

मुंशी जी : "इसीलिये तो संदेह है। बड़े भाई की तरह उन्होंने मुझे अपनाया है। अनगिनत उपकार किये हैं ?"

"आपने भी तो उन पर कम उपकार नहीं किये।"

"तो क्या तुम यह कहना चाहती हो कि मैं सोमा के लिये अक्षय को उपकारों के मूल्य में माँग लूँ ?"

पार्वती ने मुंशी जी की उलझन को सुलझाते हुए तुरन्त उत्तर दिया : "माँगने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। मुझे तो लगता है दोनों मन-मन में एक दूसरे को पहले से ही चाहते हैं। आपका इशारा ही काफ़ी होगा।"

मुंशी जी का चेहरा ज़रा गंभीर हो गया। वे बोले : "यही तो मुश्किल है कि हम दोनों अनहोनी बात के स्वप्न देखने लगे हैं।"

"अनहोनी क्यों ?" पार्वती ने पास ही तिपाई पर बैठते हुए और इस बात का फ़ैसला करके ही उठने की ठानकर पूछा।

मुंशी जी के माथे की रेखाएँ भी गहरी हो गई थीं, बोले : "दो कारणों से यह बात अनहोनी है। पहली यह कि मैं समझता हूँ सोमा उस घर में सुखी नहीं रहेगी। दूसरी यह कि अक्षय के पिता की हैसियत बहुत बड़ी है। वे इस रिश्ते को कभी नहीं मानेंगे।"

पार्वती : "सुख-दुख की बात तो मैं नहीं मानती। सबका अपना-अपना भाग्य है। रही हैसियत की बात; सो मानने न मानने का उनका हक़ है, तुम कह तो देखो। 'ना' सुनने से हमारी हेठी तो हो नहीं जायेगी।"

मुंशी जी : "यह कठिन है। मुझसे उनकी अस्वीकृति का अपमान नहीं सहा जायगा।"

पार्वती : "तो आप खुद कुछ न कहें, उन्हें ही कहने का मौक़ा दें।"

मुंशी जी : "वह कैसे ?"

पार्वती : "उनसे सोमा के लिये कोई अच्छा लड़का तलाश करने की बात कहना। शायद वह स्वयं अक्षय का नाम ले दें। तब तो मंजूर होगा तुम्हें ?"

मुंशी जी को विवश होना पड़ा : "तुम्हारी तसल्ली के लिये मैं पूछ देखूंगा।"

पार्वती ने गहर, साँस लेते हुए कहा : "शाम को वकील साहब आयें तो अवश्य पूछ लेना। यह बात अब हो ही जानी चाहिये।"

◇ ◇ ◇

शाम को हर रोज छः बजे नीलकंठ जी कचहरी से सीधे घर आते थे। इस क्रम में आज तक व्यतिक्रम नहीं हुआ था।

घर आकर पहले वे मुंशी जी की कोठरी की ओर मुड़ते और पार्वती का हाल-चाल पूछकर तब अपनी बैठक में जाते थे। कभी-कभी सोमा के सिर पर आशीर्वाद का हाथ फेरते हुए पूछ लिया करते थे : "कुछ भी लेना हो तो माँग लेना, संकोच न करना।"

उस दिन शाम को नीलकंठ जी जब घर आये और कुशल-क्षेम पूछा तो पार्वती ने बरामदे में पड़ी कुर्सी उनके बैठने को आगे बढ़ा दी।

पार्वती के इस मौन संकेत को टालने का साहस न हुआ। मुंशी जी ने मेज बिछायी और कुछ मिठाई सामने रख दी। पार्वती ने चाय का प्याला भरा।

"आज कोई त्योहार है क्या ?" नीलकंठ जी ने कटाक्ष से पूछा।

विशेष सत्कार से नीलकंठ जी को अरुचि नहीं थी। सामाजिक प्रतिष्ठा ने उन्हें सत्कार-लोलुप बना दिया था, किंतु दूसरों की हर चेष्टा के पीछे दुर्भावना की आशंका करना और सीधी-सादी बात पर कटाक्ष करना उनका स्वभाव हो गया था। इस उपक्रम में किसे कितनी क्षति पहुँचती है, यह उन्होंने कभी सोचा नहीं था।

मुंशी जी तो उनकी इस वक्रगति से परिचित ही थे, इसलिये वे उनके सब प्रहारों को झेल जाते थे। बल्कि कभी-कभी उन्हें सचोट उत्तर भी दे देते थे। इसलिये उनकी बातचीत कभी-कभी बड़ी दिल-चस्प हो जाया करती थी।

उन्होंने उत्तर दिया : "किसी गरीब की जेब में जिस दिन दो पैसे ज्यादा पड़ गये उसी दिन उसका त्योहार हो गया।"

वकील साहब कोई और ताना कसें इससे पहले ही मुंशी जी ने अवसर पाते ही कहा : "आपसे एक सलाह लेनी है।"

नीलकंठ : "सलाह लेकर क्या करोगे ?"

मुंशी जी : "जो और करते हैं वही मैं भी करूँगा।"

नीलकठ : "और तो सलाह लेकर भूल जाते हैं और चलते अपनी राह पर हैं।"

मुंशी जी : "फिर भी तो आप सलाह देते ही हैं।"

नीलकंठ : "वह तो मैं फीस लेकर देता हूँ। सलाह देना मेरा व्यवसाय है।"

मुंशी जी : "तो मुझे भी दे दीजिये। मेरे लिये विशेष बन्धन क्यों ?"

नीलकंठ : "तुमसे विशेष प्रेम जो है, तुम सबके समान थोड़े ही हो।"

मुंशी जी ने सोचा बातों-बातों में ही असल बात टल न जाय इस लिये शीघ्र ही दिल की बात कह ही डालनी चाहिये। बोले :

"सोमा की आयु विवाह-योग्य हो गयी है, कोई अच्छा घर बताइये।"

वकील साहब स्वयं इस सिलसिले को छेड़ना चाहते थे। मुंशी जी ने उन्हें मुँह माँगा अवसर दे दिया। एक मिनट चुप रहकर वह मुंशी जी के चेहरे पर नज़र गड़ाये बैठे रहे।

फिर पूछा : "अच्छे घर का मतलब ?"

मुंशी जी ने बहुत विनय के साथ कहा : "आप मुझसे ज्यादा समझते हैं इसका मतलब।"

वकील साहब निरुत्तर नहीं हुए : "मेरी बात छोड़ो, जो दुनिया समझती है वही मैं भी समझ लूँ तो अच्छे घर का अर्थ है खूब पैसे वाला घर।"

"यह अर्थ भी बुरा नहीं, अर्थ बिना गृहस्थ चलता भी नहीं।" मुंशी जी ने स्वभाव-सिद्ध शान्ति के साथ कहा।

"यह तो ठीक है, लेकिन अपने से बड़े घर में संबन्ध करना व्यावहारिक बुद्धिमत्ता नहीं है।" वकील साहब ने बड़े संयत स्वर में कहा।

"दोनों घर एक दूसरे को पहचानते हों, लड़के-लड़की का मन मिला हो तो शायद......" मुंशी जी ने प्रत्येक शब्द को तोलते हुए कहा।

वकील साहब, जो मुंशी जी के संकेत को पूरी तरह समझ रहे थे अधिक सतर्क हो गये। उनके सभी सन्देहों का निवारण करते हुए उन्होंने दो टूक उत्तर दिया : "मैं तो पहचान वालों में रिश्ता करने के ही विरुद्ध हूँ।"

मुंशी जी पूरा अभिप्राय समझ गये । उत्तर उन्हें मिल चुका था—अत: अब वह केवल विचार-विनिमय के इरादे से ही पूछ बैठे :

"तब तो आपके विचार से परिचित घरों के लड़के-लड़कियों की शादी होनी ही न चाहिये ?"

"मेरे वश में हो तो मैं ऐसी शादी कभी न करूँ ।" कहकर वकील साहब ने घड़ी देखी और उठ गये किन्तु मुंशी जी ने जाते-जाते भी एक बात और पूछ ली : "बतलाने में कोई आपत्ति न हो तो क्या आप इसका कारण भी बतला सकते हैं कि पहचान वाले घरों में रिश्ता-नाता क्यों नहीं होना चाहिये ?"

वकील साहब, जो अपनी बात कहकर हल्के हो गये थे, अब नि:संकोच कहने लगे : "कारण यह कि वे एक दूसरे के शील-स्वभाव को आवश्यकता से अधिक जानते हैं । यह जानकारी दोनों के दुर्गुणों को बहुत शीघ्र सामने ले आती है, दोनों पिछली मधुर स्मृतियों के साथ बचपन की कड़वी-तीखी शिकायतों की गठरी भी संग लाते हैं । इससे उन्हें नया जीवन बनाने में कठिनाई अनुभव होती है । विवाह में नया-पन आवश्यक है । नया परिचय जीवन में नया रंग, नयी उमंग भर देता है ।" इतना कहते ही वकील साहब तेजी से चले गये ।

◇ ◇ ◇

पार्वती ने किवाड़ के पीछे से सब बातें सुन ली थीं । उसके मन पर गहरा धक्का लगा । उसका मुख पीला पड़ गया, मुख से निकलती आह को बाहर निकलने से पहले ही उसने दबा दिया । जहाँ 'राह' न हो वहाँ 'आह' भर कर ही क्या होगा ।

मुंशी जी वकील साहब के प्रहार से सभी अवसन्न-से बैठे थे कि पार्वती ने उनके पास जाकर कहा : "अच्छा हुआ, हमें असली बात तो

मालूम हो गई । अब हमें यह सोचना है कि यह बात सोमा और अक्षय तक पहुँचाई कैसे जाये ।"

पार्वती कई बार सोमा के पास गई, ऐसे अवसर भी आये कि वह मन की बात कह सकती, लेकिन साहस न कर सकी ।

सोमा को यह कहना कि वह वकील साहब के घर न जाया करे, अक्षय से न मिला करे, ऐसा ही था जैसा यह कहना कि वह अपने घर न आया करे ।

बरसों से उसने वकील साहब के घर को ही अपना घर बना रखा था । अपने घर वह कम रहती और वकील साहब के घर ज्यादा ।

वह घर उसके जीवन का हिस्सा बन चुका था । उसे अपने घर की तरह उसने स्वयं सजाया था । वकील साहब की पत्नी के देहान्त के बाद वही रोज़ सुबह उस घर के गुलदस्तों में फूल सजाती थी और सोफे-सेट से पुराने कवर उतारकर नये चढ़ाती थी ।

जो कुछ उस घर में था उसे वह अपना ही मानती थी ।

वकील साहब भी सोमा को अपनी लड़की की तरह ही चाहते थे । रोज़ वही चाय पिलाती तो पीते थे और शाम को उसके साथ दो-चार बातें करके ही नाश्ता लेते थे । सोमा उस घर की शोभा थी ।

आज उसे उस घर जाने से रोकना खिलती कली को निर्दयता से मसलकर फेंक देने के समान था कि वह अपना प्रस्फुटित रूप देखने से पहले ही सदा के लिये कुचल जाये लेकिन पार्वती को यह क्रूर कर्म करना था । उसे यह समझ ही नहीं आ रहा था कि जो आदमी दूसरे की लड़की को अपनी लड़की मानकर पाल सकता है वह उसे घर की बहू क्यों नहीं बना सकता ?

मुंशी जी से उसने जब यह सवाल किया तो उन्होंने इसका उत्तर तो दिया था कि बहू बनकर आने वाली अधिकार माँगती है और वकील

साहब सोमा को संरक्षिता के रूप में ही अपना सकते हैं। लेकिन यह उत्तर पार्वती को पूरा संतुष्ट नहीं कर पा रहा था।

सोमा को यह सन्देह तो अवश्य हुआ कि उसकी माँ उससे कुछ कहना चाह रही है, लेकिन क्या कहना चाह रही है, यह वह समझ नहीं सकी। इस कारण वह कुमार से पहले की तरह ही मिलती रही। इधर वकील साहब व मुंशी जी की परेशानी भी निरन्तर बढ़ती ही रही।

नीलकंठ जी चाहते तो कुमार को भी निषेधात्मक आज्ञा दे सकते थे। किंतु वे हृदय से अपने एकमात्र पुत्र को प्रेम करते थे। उसके दिल पर वह ऐसा गहरा घाव नहीं करना चाहते थे, जिसका भरना कठिन हो जाये। इसीलिये उन्होंने अपनी दुर्भावनाओं का लक्ष्य बनाया मुंशी जी को।

इसीलिये अगले दिन कचहरी से उठते समय उन्होंने कहा : "मुंशी जी! आप सोमा का विवाह जल्दी ही किसी अपनी-सी हैसियत के लड़के से कर दीजिये।"

मुंशी जी ने 'अच्छा' कह दिया।

लेकिन वकील साहब इतने उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुए। स्वर को कुछ कठोर बनाकर कहा :

"यह काम एक महीने के अन्दर पूरा हो जाना चाहिए।"

मुंशी जी ने ऐनक हटाकर वकील साहब की ओर चकित भाव से देखा, फिर सिर नीचा करके दस्तावेज लिखने लगे।

"यह काम सुविधा से पूरा न हुआ तो आपको ही असुविधा हो जायेगी।" नीलकंठ जी ने जैसे चेतावनी देते हुए कहा।

मुंशी जी इस असुविधा का अनुमान ही लगा रहे थे कि वकील साहब और अधिक रूखे होकर बोले : "तब आपको कोई दूसरी जगह ढूँढ़नी पड़ेगी।"

जगह का मतलब घर से था या नौकरी से, या दोनों से, इस सन्देह के निवारण का न तो समय ही था और न मुंशी जी इसका खुलासा करना चाहते थे।

वकील साहब की नौकरी में उन्होंने दस साल गुजार दिये थे। वे जानते थे कि अब यह बात कुछ दिन भी टल नहीं सकती।

उस दिन वे जल्दी ही घर लौट आये और सब बात पार्वती को समझा दी। सोमा के लिये उम्मीदवार युवकों की संख्या कम नहीं थी। एक दर्जन से अधिक घरों से पूछ-ताछ आ चुकी थी। अब उनमें से किसी-का चुनाव करना ही होगा और वह भी जल्दी ही, यह बात पार्वती ने भी खूब समझ ली थी।

◇ ◇ ◇

लेकिन समझने से क्या होता है। सोमा तो अभी इन नयी उलझनों से बिल्कुल बेखबर थी।

मुंशी जी कभी नीलकंठ जी की धमकी को याद करते और कभी सोमा को देखते—यह भी देखते कि सोमा और कुमार कैसे हिल-मिल गये हैं—दिल में एक तीखा दर्द उठकर रह जाता।

कलेजा थामकर चुप बैठ रहते।

कई दिन इसी तरह गुजर गये।

नीलकंठ जी के अल्टीमेटम का एक महीना आधे से अधिक गुजर चुका था। लेकिन सोमा और कुमार दोनों उससे बेखबर थे।

सोमा मुंशी जी को चिन्ताकुल देख कुछ पूछना चाहती थी किन्तु अपनी बात स्वयं कैसे पूछती?

आशंकाओं और विचिकित्साओं के इस रज्जुजाल में रोज नई गाठें

पड़ती जा रही थीं। और आखिर एक दिन ऐसी उलझन पड़ी कि जाल के छिन्न-भिन्न करने का अवसर आ गया।

उस दिन सोमा और कुमार दोनों जमुना नौका-विहार के लिये गये थे। जमुना का पानी सूख गया था मगर बेला बांध के पास नौका चलाने जितनी गहराई थी।

एक चप्पू सोमा के हाथ में था दूसरा अक्षय के हाथ में।

नाव मँझधार से किनारे के पास आ रही थी लेकिन सोमा को अपने प्रश्न का कोई किनारा नहीं मिल रहा था।

फिर भी सोमा ने पूछा : "नाव का किनारे लगना क्या बहुत जरूरी है ?"

अक्षय ने कहा : "नहीं, मैं तो नहीं समझता।"

"यदि वह बहती जाय, बहती ही जाय···।"

"तब क्या होगा ?"

"कुछ भी न होगा ?"

"कुछ तो ज़रूर होगा ?"

"क्या ?"

"एक दिन वह डूब जायेगी।"

"और हम ?"

"हम भी डूब जायेंगे।"

अक्षय ने कहा : "तो चलो, इसे किनारे पर न लगाओ ··· ।"

कहकर उसने नाव को किनारे से मँझधार की ओर खेना शुरू कर दिया। सोमा किनारे पर लगाने को चप्पू लगा रही थी। अक्षय ने उल्टे चप्पू चलाने शुरू कर दिये।

सोमा बोली : "यह क्या करते हो ?"

अक्षय ने मानो कुछ सुना ही नहीं। उसने ज़ोर-ज़ोर से चप्पू चलाने

शुरू कर दिये। सोमा ने रोका। अक्षय नहीं माना। उसने सोमा के हाथ से भी चप्पू छीन लिया।

सोमा लाचार खड़ी थी। उसके चेहरे पर घबराहट और आँखों में कातरता के भाव नजर आ रहे थे। सोमा की आँखों में कातरता, विवशता···असहायपन, अक्षय ने दूसरी बार ही देखे थे।

उस क्षण शायद पहली बार अक्षय के मुख से उन्मुक्त हास्य का फव्वारा छूटा। बरसों से जिन ओठों पर हँसी तो क्या मुस्कान भी नहीं खिली थी आज उन पर उन्माद-भरा अट्टहास खेल रहा था।

सोमा डरकर चिल्ला उठी! उसके पैर डगमगा गये और नाव उलट गई।

किनारा निकट ही था। दूसरे ही क्षण दोनों कमर तक के पानी में गोते खा रहे थे।

पानी में पड़ते ही अक्षय का विक्षेप उतर गया। वह सोमा को बचाने के लिये लपका। सोमा उस समय तक स्वयं अपने पैरों पर खड़ी हो चुकी थी।

एक दूसरे का हाथ पकड़कर दोनों किनारे पर आये।

सोमा ने कहा : "अक्षय, यह क्या हो गया था तुम्हें ?"

"कुछ भी तो नहीं।" अक्षय ने सब कुछ भूले हुए आदमी की तरह जवाब दिया।

सोमा ने कहा : "मैं तो डर गयी थी।"

अक्षय : "मैं खुद डर गया था।"

"किससे ? पानी से ?"

"नहीं अपने से ही।" अक्षय ने काफी गंभीरता से उत्तर दिया। उसका मन स्वयं उससे पूछ रहा था : "भले आदमी! यह क्या हो जाता है तुझे ?"

क्या सबको ऐसा ही होता है ? क्या वह औरों से भिन्न है ? मन

में हर समय वैसी घुटन-सी क्यों महसूस होती रहती है ? और किसी समय वह बेकाबू फूट क्यों पड़ता है, जैसे पहाड़ों में घिरी झील बांध तोड़कर बह निकले ?

इन प्रश्नों का उत्तर कौन दे ? और अभी तो गीले कपड़ों से घर पहुँचने की समस्या थी। उसी तरह भीगे कपड़ों के साथ वह घर पहुँचा।

दुर्भाग्य से उस दिन वकील साहब का प्रोग्राम बदल गया था और वह घर में ही बैठे थे ! अक्षय को गीले कपड़ों में लिपटा देखा तो पूछ बैठे—"कहाँ गया था ? किसके साथ गया था ? गीला कैसे हुआ ?"

साधारणतया वह ऐसे प्रश्न नहीं पूछा करते थे। इतना अवकाश ही नहीं था उन्हें। आज यह कांड देखकर उनके कान खड़े हो गये। उन्होंने सोच लिया आज अक्षय को सीधे रास्ते पर लाना ही होगा।

"कपड़े बदलकर मेरे पास आना।" वकील साहब ने अक्षय से कहा। ठंडे पानी से वह इतना नहीं काँपा था जितना उनकी बात सुनकर काँप गया। उसने उसमें एक घंटा लगाया।

एक घंटे से भी अधिक वकील साहब ने अक्षय को समझाया। उसे डराया प्रलोभन दिये और फिर धमकाया। "एक बार ही सुन ले, मैं कहता हूँ सोमा बहू बनकर हमारे घर नहीं आ सकती, समझा ?"

"समझा तो नहीं, सुना अवश्य।"

"तो समझ ले।"

"समझूँ तो तब यदि कारण मालूम हो।"

"कारण यही जान ले कि मुझे पसन्द नहीं।"

"क्यों पसन्द नहीं ?" अक्षय ने बड़े साहस से प्रश्न किया।

"इस क्यों का जवाब देना लाजमी नहीं, मगर, मैं देता हूँ। इसलिये कि बड़े होकर तुम यह न कहो कि तुम्हारे बाप ने तुम्हारा मार्ग-दर्शन नहीं किया।"

अक्षय चुपचाप सुन रहा था। नीलकंठ जी कह रहे थे : "मैं जो

कहता हूँ, तुम्हारे भले के लिये कहता हूँ। भलाई के काम कई बार विष लगते हैं। लेकिन विष ही दवा बन जाता है रोग के लिये।"

"कैसा रोग ?"

"रोग ? जवान लड़कों के लिये लड़कियाँ रोग ही बन जाती हैं। वे उसे प्रेम कहते हैं। जीवन का अर्थ कर्तव्य है प्रेम नहीं। सामाजिक नियम-व्यवस्था का ध्यान रखते हुए ही हमें कर्तव्य पालन करना है। इस व्यवस्था में ही कल्याण है।"

"कैसी व्यवस्था ?"

"यही कि विवाह समान दर्जे के लोगों में ही हो सकता है। हमारा घर दिल्ली के इने-गिने घरों में है। छोटे घर में रिश्ता करने से हमारा दर्जा गिर जायेगा।"

"छोटे-बड़े का नाम क्या केवल पैसे से होता है ?"

"हाँ, आज तो यही सच है। सोमा के पिता की क्या हैसियत है ? मेरा मुंशी है। मेरे बँगले में रहता है। घर जाओ तो बैठने के लिये फटी चटाई मिलेगी। न नौकर, न चाकर। सोमा अच्छी लड़की है, पर, गरीब घर की है। उसमें बड़ों के बीच रहने के संस्कार नहीं आ सकते। हमें छोटे घर में रिश्ता करने की ज़रूरत भी क्या है। जब हमारे पास इतने बड़े घरों के रिश्ते आ रहे हैं ? कल ही दीवान जमनाप्रसाद जी पूछ रहे थे। उन्हें नहीं जानता ? शहर के सबसे बड़े रईस हैं। मैं उन्हें हाँ करने जा रहा हूँ।"

"बोल, कर दूँ हाँ ?"

"मुझे सोचने का तो समय दीजिये।" उसने पैर के अंगूठे को जमीन पर गड़ाते हुए कहा।

"सोच ले, लेकिन तब तक सोमा से तेरी भेंट न होनी चाहिये।"

"क्यों ?" कुमार ने डरते-डरते पूछा।

"इससे तेरे होने वाले रिश्ते में रुकावट आ सकती है। वे तुझे उस-

के साथ कहीं देख लगे तो क्या सोचेंगे ? सोमा मेरे मुंशी की लड़की है, इससे अधिक नहीं, तुझे भी इससे अधिक नहीं सोचना चाहिये।"

कुमार : "मैंने कभी सोमा की बावत सोचा नहीं। आपका सन्देह निराधार है।"

"तूने न सोचा हो, मुमकिन है, लेकिन सोमा के मन की बात तुझे क्या मालूम, उसके और उसके माँ-बाप के तो भाग्य खुल जायेंगे। वे तो चाहेंगे ही कि इतने बड़े घर से उनका रिश्ता जुड़े। लेकिन हमें तो अपनी मर्यादा का ध्यान रखना है। हर आदमी अपने से ऊँची ओर देखता है। उनके लिये हमीं कुबेर हैं। लेकिन हम नीचे की ओर क्यों झुकें ? हम छोटे घर में रिश्ता क्यों करें ?"

सोमा पर्दे के पीछे से सब देख-सुन रही थी। इससे अधिक वह न सुन सकी। हम बड़े घर के हैं, सोमा छोटे घर की है। दिल में तूफान की तरह उठते इन शब्दों को दबाये वह घर आ गयी।

◇ ◇ ◇

वकील साहब के व्याख्यान को पूरा सुने बिना सोमा घर चली आई।

सोमा की जगह कोई और लड़की होती तो वह शायद अचेत होकर गिर पड़ती या वृक्ष की टूटी हुई शाखा के समान धरती पर लोट जाती।

सोमा को भी इस अचानक उल्कापात के बाद भी स्वस्थ दिखाई देने के लिये अप्रतिम संयम से काम लेना पड़ा। वह स्वभाव से दृढ़ संकल्प और असाधारण तेजस्वी लड़की थी, किन्तु यह प्रहार भी साधारण न था।

उससे तिलमिलाती वह घर पहुँची तो सीधी अपने पलंग पर जा लेटी। उसके मन में अक्षय के शब्द बारम्बार अंकित होते थे : "मैंने कभी सोमा की बावत सोचा ही नहीं।" यह झूठ था। नीलकंठ जी का यह कहना कि वे बड़े घर के हैं, सोमा छोटे घर की। सोमा को उतने नहीं चुभ रहे थे जितना कुमार का उत्तर।

रात भर सोमा पल भर के लिये भी सो नहीं सकी।

सुबह माँ ने उठाया और कहा : "बेटी कोई चाय पर आनेवाला है। जरा मुँह-हाथ धोकर तैयार हो जा।"

"मैं चाय पर न आऊँगी, मेरी तबियत खराब है।"

"आज आ जाना, फिर न कहूँगी। ऐसी बात रोज़-रोज़ नहीं होती।"

"कौन-सी बात माँ ?" सोमा का सन्देह बढ़ा।

माँ ने समझाया : "बेटी, यही वह लड़का है, जिससे हम तेरे विवाह की बात कर रहे हैं।"

"मेरे विवाह की ?"

"हाँ।"

"मैं विवाह नहीं करूँगी। और न चाय पर आऊँगी।"

सोमा यह कहकर फिर पलंग पर लेट गयी।

इतने में मुंशी जी वहाँ आये, बोले : "तू विवाह भले ही न करना। हम तेरे पल्ले कोई लड़का मजबूरी से बांधेंगे नहीं। लेकिन, सामने आने में क्या हर्ज है ? घर बुलाये अतिथि का अनादर न होना चाहिये।"

"सामने आकर कोई हमारा निरीक्षण-परीक्षण करे, परख करे। छि:, मैं भगवान के सामने भी ऐसी परीक्षा न दूँ। पुरुष की तो औकात ही क्या ?"

"लेकिन वह तुझे परखने तो नहीं आया।"

"फिर क्या करने आया है ?"

"वह आया है, अपनी परख करवाने। उसकी बहन तुझे देख चुकी है और अपने भाई की ओर से हाँ करके जा चुकी है। उसने कहा था : मेरा भाई मेरी बात न टालेगा। तब मैंने कहा : लेकिन, मेरी बेटी ऐसी भोली नहीं है। वह भी लड़के को देखे बिना 'हाँ' न करेगी। तभी वह आया है जिससे तू भी देख ले, बात कर ले और 'हाँ' या 'ना' कर दे। तेरी इच्छा है। कोई मजबूरी नहीं है।"

कहकर मुंशी जी चले गये।

उनके जाने के बाद सोमा के मन में फिर विचारों का प्रवाह उमड़ आया। नीलकंठ जी ने तो उसे अक्षय के योग्य समझा ही नहीं था। लेकिन अक्षय भी मुकर गया। सोमा को विश्वास ही न होता था! यह तो उसने स्वयं सब सुना था और अगर कोई दूसरा आकर कहता कि अक्षय का विचार तुम्हें जीवन-संगिनी बनाने का नहीं है तो क्या वह विश्वास कर लेता? नहीं न! किन्तु उसने स्वयं सब सुन लिया तो उसके तरुण मन का गर्व उभरकर उठ आया। जो अक्षय कल तक दबे स्वर में बात करता था, आज उसका यह रुख? धन के सिवाय और कोई चीज़ नहीं है जिसे हम किसी मनुष्य में देखें? सोमा का आहत अभिमान कसक रहा था। उसमें रूप है, इतना कि अक्षय जैसे दस उसके लिये स्वप्न देखें। ठीक है, समझ गयी, आखिर अक्षय भी तो अपने बाप का बेटा है। धन-सम्पत्ति के मद का प्रभाव आनुवंशिक है। सो, अक्षय में भी उसकी छाया आज मुखर हो बैठी तो कोई नयी बात नहीं, पर अक्षय तो सोमा के लिये पराया नहीं था, बाहर का नहीं था। अपना था। मन का मोड़ कहीं से अक्षय की ओर मुड़ गया था। इसीसे ख्याल आता है कि जिस परम्परा में नीलकंठ सोमा के विरुद्ध है, उसी-में अक्षय भी अलगाव कर लेगा।

सोमा की आँखों में आँसू भर आये। किन्तु जीवन के पहले ही

चरण में यह निराशा और यह उदासी उसे अच्छी न लगी। शीशे के सामने जाकर उसने आँसू पोंछ डाले। आँसू पोंछने के साथ उसने एक बार तो अक्षय और उसके नाम के साथ उमड़ने वाली सब भली-बुरी स्मृतियों को भी पोंछ डालने का यत्न किया।

फिर उसने शीशे में मुख देखा। उसकी आँखें लाल हो गई थीं, सूजी हुई भी थीं। आँखों का निचला भाग सुर्ख हो गया था। लेकिन अब वह गालों पर कोई निशान नहीं रखना चाहती थी।

◇ ◇ ◇

दूसरे दिन जब वह पिता जी के लिये चाय लायी तो पर्वत की उपत्यका में पहुँचकर शान्त हुई झील की तरह वह शान्त हो चुकी थी। मुंशी जी चाय पी रहे थे। सोमा पास ही एक मूढ़े पर बैठ गई।

मुंशी जी ने कहा : "कुछ उदास है बेटी··· मैं जानता हूँ, सब जानता हूँ। दोष मेरा ही है। अमीर की शरण में रहने का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता।···मैं तो देर से सोच रहा था, कहीं और चलकर रहें। लेकिन अब नयी जिन्दगी शुरू करने की हिम्मत नहीं रही। तेरी शादी हो जाती तो मैं तो इस घर से ही नहीं नौकरी से ही निजात पा जाता।"

सोमा ने शादी की बात सुनकर मुख ऊपर उठाया। बोली : "शादी होना क्या बहुत जरूरी है पिता जी ?"

"जरूरी न होता तो अभी तक शादी की रस्म खत्म हो गयी होती।"

"मैं तो अभी शादी नहीं कराना चाहती।" सोमा ने दृढ़ता से कहा।

"मैं भी तेरी हालत में होता तो शायद यही सोचता, लेकिन शायद तू मेरी मजबूरी को नहीं समझ रही है।"

"कैसी मजबूरी पिता जी ?" सोमा ने उत्सुकता से पूछा।

"यही कि मुझे तेरी शादी एक महीने के अन्दर कर देनी है।"

सोमा इस नयी मजबूरी को बिल्कुल नहीं जानती थी। बोली : "यह एक महीने का बन्धन क्यों ?"

"यह बन्धन वकील साहब ने लगाया है। तेरी शादी एक महीने में न हो गयी तो मुझे नौकरी छोड़नी होगी।"

"ऐसी शर्त क्यों ?"

"इसलिये कि जब तक तू शादी न करेगी, अक्षय किसी और से शादी करने का विचार न कर सकेगा।"

"मेरी ओर से अक्षय पूरी तरह स्वतन्त्र है, मैं उसके मार्ग में नहीं आऊँगी।"

"तू तो नहीं आयेगी, लेकिन लोगों को विश्वास कैसे होगा और वकील साहब का विचार है कि जब तक तेरी शादी न हो जायगी वे अक्षय को दिल्ली में नहीं रखेंगे।"

सोमा ने क्रोध में आकर कहा : "उनकी जैसी इच्छा हो करें, हम उनके गुलाम तो नहीं हैं।"

"मैं तो गुलाम ही हूँ बेटी !" कहते हुए मुंशी जी के हाथ काँप रहे थे। अपनी लाचारी पर उन्हें स्वयं लज्जा आ रही थी। मालिक का स्नेह पाकर भी नौकर गुलामी से छुटकारा नहीं पाता यह नग्न सत्य जीवन का अभिशाप बनकर सामने खड़ा था।

सोमा को इस स्थिति के समझने में देर नहीं लगी। परिस्थितियों के अनुरूप बन जाने की क्षमता उसमें खूब थी।

"आपकी जो इच्छा हो पिताजी" कहकर सोमा ने सिर झुका लिया।

मुंशी जी के मन पर छाया घना कुहरा कुछ हल्का हो गया। सोमा की स्वीकृति ने उन्हें कुछ और कहने का बल दिया।

"अमीर घरों में लड़कियों को सुख नहीं मिलता बेटी ! वकील साहब की स्वर्गीया पत्नी की ही मिसाल लो। बिचारी कितनी अच्छी थी, लेकिन एक दिन जरा-सी बात पर वकील साहब नाराज हो गये और फिर कभी नहीं बोले। जितने दिन वह जीवित रही घर में उपेक्षिता और तिरस्कृता-सी रही। और अन्त में एक दिन उसने अपने ऐसे जीवन का अन्त कर दिया......"

"लेकिन वह तो शायद पैर फिसलकर सिर फटने से मरी थीं पिताजी ?" सोमा ने कहा। इससे पहले भी उसने संदिग्ध सत्य के रूप में यही बात सुनी थी। लेकिन उसे पुष्ट करने के लिये ही उसने यह प्रश्न किया था।

"हाँ दुनियावालों को यही मालूम है। उनकी आत्महत्या के समाचार से वकील साहब की प्रतिष्ठा पर कलंक आने का डर था—इसलिये पुलिस का मुँह बन्द कर दिया गया।" मुंशी जी ने कहा।

सोमा यह सुनकर आश्चर्य में डूब गयी थी।

मुंशी जी ने कहना जारी रखा :

"बड़े घरानों में यह सब होता ही रहता है। उनके मिथ्या दम्भ की रक्षा के लिये कितने अनाचार, अत्याचार होते हैं, उनकी कहानी सुनकर तो यही पता लगता है कि जो इनसे और इनके प्रभाव से दूर रह सके वही भाग्यवान् है।"

मुंशी जी ने जब देखा कि सोमा ध्यान से सुन रही है तब वह कहते गये। सोमा के मन से अक्षय की छाप मिटाकर नये प्रस्ताव की पृष्ठभूमि तैयार करना भी इस समय आवश्यक था। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर उन्होंने कहने का सिलसिला जारी रखा :

"इनके प्रभाव में आये सभी लोगों को दुख उठाना पड़ता है। उनके चरित्र में विचित्र गुत्थियाँ पड़ जाती हैं जो उन्हें उम्र भर सताती हैं।...

कुमार को ही देखो। उसके स्वभाव में विचित्र विक्षेप आ गये हैं। उसके पिता समस्त स्त्रियों के घोर विद्वेषी हैं। उन्हीं संस्कारों में पले होने से कुमार के दिल में भी किसी स्त्री के लिये ठीक-ठीक सहानुभूति कभी पैदा नहीं हो सकेगी। वह भी अजीब अनमेल तत्वों का मिश्रण बन गया है। अपनी पत्नी के लिये ही वह पहेली नहीं रहेगा, समाज के लिये भी समस्या बना रहेगा। मुझे वह प्रिय है, अपने बच्चे के समान ही मैंने उसे प्यार दिया है—लेकिन अपने पिता से विरासत में उसे जो मिला है, उसके प्रभावों को तो मैं भी नहीं मिटा सकता।"

सोमा को भी कुमार के विचित्र होने का कुछ-कुछ सन्देह तो था, पिता जी से उसका समर्थन मिल गया। कुमार के आचरण में कभी-कभी हिंसक उन्माद जाग्रत होने की बात अभी तक उसके लिये रहस्यमय ही बनी हुई थी। वह यही समझती थी कि यह उन्माद केवल प्रेम-विह्वलता और कातरता का लक्षण है। इसलिये मन ही मन वह ऐसे विक्षिप्त व्यवहार को अपनी विजय मानती थी और मन ही मन उन पर गर्वित भी होती थी। लेकिन कभी-कभी उसे डर भी लगता था। वह चाहती थी कि किसीसे इसकी चर्चा करे—लेकिन किससे करती? कौन उसे समझेगा?

आज पिता जी ने जब खुले दिल से बातें कीं तो उसका दिल भी खुला और उसके मुख पर भी एक प्रश्न आया:

"इस उम्र में क्या सभी लड़कों में कुछ हिंसक उन्माद आ जाता है?"

मंशी जी ने शब्दों को तोलते हुए उत्तर दिया:

"कुछ उन्माद तो स्वाभाविक हैं, लेकिन हिंसक प्रवृत्ति ऐसे व्यक्तियों में ही आती है जो अस्वाभाविक निरोध में रहे हों।"

सोमा: "वह क्यों पिताजी?"

मुंशी जी को फिर मौका मिला कि वे सोमा के दिल में अक्षय के

प्रति अरुचि पैदा करते, इसलिये उन्होंने सोमा के प्रश्न का विशद उत्तर दिया :

"जिन युवकों को यह सिखाया जाता है कि औरत काली नागिन से भी विषैली होती है और प्रेम करना अपराध है—वे प्रेम-भाव पैदा होते ही उस भाव के लिये जिम्मेदार स्त्री के प्रति हिंसक हो जाते हैं। अपने प्रेम को पाप मानकर वे पाप के, उस कल्पित पाप के मूल कारण को नष्ट करने की चेष्टा में पागल-से बन जाते हैं। इस यत्न में वे अपने और अपनी प्रेयसी—दोनों को सर्वनाश में झोंकने की चेष्टा करते हैं।"

पिता जी की बातों से सोमा के दिल में अक्षय के प्रति अरुचि तो पैदा नहीं हुई—लेकिन यह विचार अवश्य अंकुरित हो गया कि वकील साहब की बहू बनकर उस घर में जाने से वह बहुत भाग्यवती नहीं होगी।

उसी समय सोमा की माँ ने आकर कहा : "कल प्रोफेसर अमरेश आयेगा। उसके घर से एक आदमी आया था, मैंने उसे कल सुबह आने को कह दिया है।"

सोमा के मौन को दोनों ने स्वीकृति का चिह्न समझ लिया।

◇ ◇ ◇

अगले दिन सुबह ही पार्वती ने घर को खूब माँज कर धोया। रस्सी पर लटके कपड़े बक्सों में बंद कर दिये। रसोई में सुबह से ही चूल्हा जल गया। कुछ पक्वान्न भी बने।

और दस बजते-बजते बरामदे में एक मेज सजा दी गयी। प्रोफेसर अमरेश ठीक दस बजे आये। मुंशी जी ने उनका स्वागत किया। कुछ देर पास में बैठे भी, मगर थोड़ी देर में उठ गये। सोमा को बुलाया गया।

वह बिल्कुल साधारण वेश-भूषा में वहाँ आयी। दोनों ने एक दूसरे को एक बार देखा और फिर आंखें झुका लीं। दस मिनट दोनों मौन बैठे रहे। कोई बात न हुई।

यह भेंट भी विचित्र थी। कोई कुछ न बोला। मुलाकात खत्म हो गयी।

कुछ देर बाद सोमा उठकर चली गयी। मुंशी जी आकर अकेले अमर के पास बैठ गये।

मुंशी जी : "कुछ परिचय हुआ आपका ?"

अमर : "इतनी-सी देर में परिचय कैसे हो सकता ?"

मुंशी जी : "आपने कुछ पूछा न होगा, नहीं तो वह अवश्य उत्तर देती।"

"पूछने से क्या लाभ ? ऐसी पूछ-परख पर मेरा विश्वास भी नहीं है।" अमर ने गंभीरता से उत्तर दिया।

मुंशी जी : "क्यों, आप क्या बिना देखे-जाने विवाह के पक्ष में हैं ?"

अमर : "मैं तो मानता हूँ जिसे स्वीकार कर लिया, वही अपना हो गया। पूछ-परख में अविश्वास झलकता है। छान-बीन और जाँच-पड़ताल तो अपराधियों की होती है।"

मुंशी जी : "तो आप भाग्यवादी हैं।"

अमर : "अवश्य ! देखिये न सभी संबंध भाग्य से बनते हैं। भाग्य ने ही किसीको आपका पुत्र बनाया और भाग्य से ही आप किसीके भाई हैं। भाग्य के संबंध ही सच्चे बनते हैं।"

मुंशी जी : "लेकिन कुछ तो गुणावगुण देख ही लेने चाहियें।"

अमर : "दोषों पर दृष्टि रखकर, हम किसीको नहीं अपना सकते। गुण तो आकर्षित करते ही हैं। दोष के प्रति हम अनुदार क्यों हो जायें ? उन्हें सहने और समझने का भी तो दायित्व है हमारा। यह दायित्व और

भी बढ़ जाता है, जब दोषी हमारा कोई इष्ट जन होता है।"

मुंशी जी थे तो मुंशी, मगर उन्हें जीवन का खूब अनुभव था। अमर में अपने ही विचारों की छाया देखकर वे गद्गद् हो गये।

सोमा भी अपने कमरे में परदे के पीछे से, अमर की बातें सुन रही थी। उसे बातें कुछ ज्यादा स्पष्ट नहीं सुनायी दीं, लेकिन अमर की गहराई और उसकी सादगी से वह पर्याप्त प्रभावित हुई। मन तो उसका हुआ कि वह फिर अमर के सामने बैठ जाय और उससे बातें करे लेकिन संकोचवश ऐसा न कर सकी।

मुशी जी और अमर की बात चल रही थी।

मुंशी जी ने कहा: "आपके विचार ऊँचे हैं। फिर भी एक दूसरे को समझ लेना जरूरी है। मैं आपसे कुछ पूछूँ तो बुरा न मानियेगा।"

अमर: "पूछिये।"

मुंशी: "सोमा अभी कुछ और सीखना, पढ़ना चाहती है। नृत्य और संगीत का भी उसे शौक है। आप क्या विवाह के बाद भी उसे सीखने और तरक्की करने का मौका देंगे?"

अमर: "इसमें क्या पूछना? हमें सभी के गुणों को विकास पाने का अवसर देना चाहिये। अवसर ही क्यों, पूरी सहायता भी देनी चाहिये।"

"एक बात और, हम साधारण स्थिति के लोग हैं, फिर भी जो हो सकेगा, अधिक से अधिक······देने का यत्न········· ।"

"ऐसा यत्न न कीजिये। क्योंकि मैं तो बहुत ही साधारण व्यक्ति हूँ। महीने में दो सौ रुपये कठिनाई से कमा पाता हूँ। मालूम नहीं, इतने में गृहस्थी के उत्तरदायित्व भी निभा पाऊँगा या नहीं।"

"हमारी लड़की भी फूलों में नहीं पली। घर के काम करना जानती है। आप चिन्ता न करें।"

कहने को तो मुंशी जी कह गये 'चिन्ता न करें' लेकिन चिन्ता का हल्का-सा कुहरा उनके मन में स्वयं घिर आया था।

अमर के जाने के बाद मुंशी जी ने सोमा की माँ से कहा :

"लड़का बड़ा ही सज्जन और चरित्रवान है, किन्तु सोचता हूँ क्या सोमा का निर्वाह इतनी थोड़ी रकम में हो जायगा ? दो सौ रुपये तो बहुत कम हैं।"

"दो सौ रुपयें में कैसे निर्वाह होगा सोमा का ? वह तो बड़े लोगों में पली है··· ।" पार्वती ने पति की बात का समर्थन किया।

अमर के जाने के बाद पार्वती सोमा के पास गयी। सोमा माता-पिता की चिन्ता समझ चुकी थी।

"दो सौ रुपये में तुम्हारा निर्वाह हो जायगा सोमा ?" इस प्रश्न के उत्तर में उसने कहा :

"निर्वाह के लिये शादी करना तो बड़ा अपमानजनक है। यदि विवाह इसीका नाम है तो··· ।"

"नहीं बेटी, विवाह तो घर बनाने को होता है! जीवन-यात्रा अकेले नहीं होती; कोई साथी चाहिये।"

"फिर निर्वाह की बात क्यों करती हैं आप ? वह तो मैं अपनी मेहनत से भी कर सकूँगी।"

"फिर कौन-सी बात करूँ बेटी ? माँ-बाप को यह चिन्ता तो रहती ही है।"

सोमा ने जरा सजल आँखों से कहा :

"जहाँ आदर से हमें स्वीकार किया जाय, वहाँ जाना-रहना अच्छा लगता है। अमीर घरों में न सुख है न आदर। भाग्य होगा तो अमीरी खुद हाथ जोड़े आ जायेगी। मेहनत-मजदूरी कर लेंगे, लेकिन किसी पैसे वाले की गुलामी तो न करनी पड़ेगी। मुझे तो तायी (नीलकंठ की पत्नी को वह तायी कहती थी) की आत्महत्या की बात याद आती है तो···" कहते-कहते सोमा रो पड़ी और बाहर निकल गयी।

◇ ◇ ◇

सोमा के व्यवहार से स्पष्ट हो गया था कि उसने अमरेश को जीवन-संगी बनाना स्वीकार कर लिया है। दूसरे ही दिन वाग्दान की रस्में अदा हो गयीं।

मुंशी जी ने सोमा के वाग्दान का समाचार जब वकील साहब को दिया तो उन्होंने मुंशी जी की पीठ थपथपायी, और बधाई दी।

कुमार को बुलाकर उन्होंने ५०० रु० दिये और सुन्दर-सा उपहार लेकर सोमा को भेंट करने के लिये कहा।

सोमा की सगाई के समाचार ने उसे और भी चुप, और भी बेबस कर दिया था। इतना बेबस कि जब वह सोमा के पास पहुँचा तो आँख उठाकर बात करने का साहस भी न बटोर सका।

मन भरा था, पर शब्द ओठों तक आकर रुक जाते थे।

पहले अक्षय को सामने देखकर वह झटपट उठकर बाहर जाने को तैयार हो जाती थी। आज वह वैसी ही बैठी रही और चुप हो गयी।

अक्षय ने पूछा : "सोमा, कब से चल रही थी यह बात ?"

"कौन-सी बात ?"

"यही तुम्हारी सगाई की", अक्षय ने 'सगाई' शब्द इस प्रकार लजाकर कहा जैसे वह लड़की है और उसी की सगाई हो रही है।

"क्या करोगे जानकर ?"

"मुझसे छिपाकर क्यों रक्खी यह बात ?"

"बताना जरूरी नहीं समझा।"

"क्यों ?"

"सब छोटी-मोटी बातें कहने का वचन तो दिया नहीं था मैंने।"

"मगर, यह तो कोई छोटी-मोटी बात न थी।"

"तुम्हारे लिये ऐसी ही थी।"

"क्यों ?"

"इसमें तुम्हारी दिलचस्पी भी क्या होती ?"

अक्षय ने लम्बी साँस खींचकर कहा : "ख़ैर जाने दो। यह बताओ, कैसे हैं वर महोदय ? देखा है उन्हें ? सुन्दर हैं ?"

"सुन्दरता देखने से मिट जाती है। देखी वस्तु का भी अनदेखा पहलू ही सुन्दर रहता है।"

"अब तो दूर चली जाओगी ?"

"जाना ही पड़ेगा।"

"भूल न जाना।"

"भूलने में ही भलाई है, टूटा तार या टूटा शीशा, सँभाले रखने की सोमा की आदत नहीं।"

"लेकिन मैंने तो कुछ नहीं किया सोमा।" अक्षय के मुँह पर उसका अपराध झलक आया।

"मैंने कब कहा ?"

"ईश्वर करे तुम सुखी रहो। लेकिन कभी कष्ट हो तो..."

"तुम्हारे पास भीख माँगने न आऊँगी।"

"और मुझे कष्ट हुआ ?"

'तुम जैसे अमीरों का सारा ज़माना हमदर्द होता है, तुम्हें किसी-की क्या परवाह ? तुम बड़े लोग ! जिनकी कथनी और करनी में अंतर होता है।"

"कैसी अजीब बातें कर रही हो ? हो क्या गया है तुम्हें ? कुछ समझ नहीं आता।"

"न तुम्हें आयेगा। समझना ही तो कठिन है।"

"वाक़ई कठिन है।"

"और समझकर करना भी क्या ? अपना ही समझ नहीं आता इन्सान को तो दूसरे का क्या समझेगा वह ?"

"अभी से ऐसी हो गई हो ? शादी के बाद न जाने क्या बन जाओगी सोमा।"

"कुछ भी बनूं, तुम्हें मेरे कारण पिता जी से कुछ सुनना नहीं पड़ेगा।"

"ओ, तो तुमने पिता जी की बातें सुन लीं। लेकिन वे तो उनकी बातें थीं।"

"तुम भी चुप रहे, यही बुद्धिमत्ता भी है।"

"मेरी चुप्पी का अर्थ···"

"अब उसके अर्थ लगाने का समय गुजर गया।"

"नहीं सोमा, ऐसा न कहो। मैंने उनसे समय माँगा था, तुमसे भी समय माँगता हूँ। कुछ तो धैर्य रखो।"

"समय किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता। वह तो चलता ही जाता है।"

"सोमा ! अभी यह सगुन रुकवा दो ! मुझे दो-चार दिन तो समय दो, सोचने का।"

"सोचने का समय गुजर गया अक्षय ! हर चीज का समय होता है। मगर एक बात पूछूं ?"

"पूछो !"

"तुम्हारे घर के पास जो ताड़ का वृक्ष है वह तुम्हारे घर से कितना ऊँचा है ?"

"होगा कोई दस हाथ।"

"और कभी-कभी उसपर एक चील बैठ जाती है, वह हम सबसे ऊँची बैठती है।"

एक बात और :

"तुम्हारे घर में कितनी हजार ईटें लगी हैं ?"

"मालूम नहीं।"

"तुम्हारे पिता जी को मालूम है, उनसे पूछ लेना।······लेकिन तुम्हारे घर के पास ही जो हवेली है, उसमें तुम्हारे घर से ज्यादा ईंटें लगी हैं।"

"लगी होंगी।"

"गारा, मिट्टी भी ज्यादा लगा है।"

"होगा।"

"उसकी दीवारें पाँच फीट मोटी हैं। आदमी क्या, हवा, रोशनी भी वहाँ नहीं घुस सकतीं। ······तुम भी अपने मकान में वैसी दीवारें क्यों नहीं चिनवा लेते ?"

······सोमा ?"

"एक बात और बता दो, फिर कभी कुछ न पूछूँगी।"

"क्या ?"

"क्या घर जितना बड़ा हो दिल उतना ही छोटा होना लाजमी है ?"

"तुम पूछती जाओ।"

"तुम उम्र भर बाप की कमाई खाओ किसीको क्या आपत्ति, मगर क्या यही जिन्दगी है ?"

"··························"

"अपने पर तुम्हें इतना भी भरोसा नहीं कि तुम अपने पैरों पर खड़े हो सकोगे ?"

"··················"

"यह क्या कायरता नहीं ?"

"·················"

"मैं सुना करती थी, रुपये का लोभ आदमी को अपंग बना देता है मगर यह न जानती थी कि वह इतना कायर भी बना देता है।"

"बात रुपये की नहीं समाज की है सोमा, माता-पिता की आज्ञा के

विरुद्ध विवाह करना समाज से द्रोह करना है।" आखिर अक्षय ने कहा।

"और बिना काम किये मिलने वाले धन के लोभ में प्रेम की बलि चढ़ा देना ही क्या समाज का आदर्श है?…क्यों समाज को बदनाम करते हो? तुम्हें मन में भरोसा नहीं था कि तुम कभी भी अपनी जिन्दगी आप बना सकोगे, इसीलिये तुमने समाज का आसरा लिया।"

अक्षय : "तुमने कुछ भी ता प्रतीक्षा नहीं की सोमा!"

सोमा : "प्रतीक्षा! किस बात की? इसकी कि तुम्हारे पिता जी का मन मेरे आँसू देखकर छोटे घर की बहू लाने को पसीज जाता! दयार्द्र हो जाता?"

अक्षय चुप था।

सोमा : "बोलते क्यों नहीं? प्रतीक्षा करत .क तुम्हारे दिल में नये साहस का जन्म होता?"

अक्षय : "मुझसे तो पूछ लेती!"

सोमा : "तुम अपने को ही कुछ नहीं बता सके, मुझे क्या बताते? मुझ पर दया न दिखाओ अक्षय! मैं बड़े घर की छाँव में रहना ही नहीं चाहती। ईश्वर ने चाहा तो मेरी छाँव में कई बड़े घर पनपेंगे।

मगर हाँ—अब जब कोई महारानी तुम्हारे द्वार पर भिक्षा माँगने आये और तुम उसे अपने महल में स्वीकार कर लो तो मुझे भी समाचार अवश्य देना।

मैं भी देखना चाहूँगी, कौन है वह स्वर्ग की उर्वशी जो इस बड़े घर की शोभा बनती है।"

"अब क्यों जलाती हो सामा? मेरा हृदय तो पहले ही क्षत-विक्षत है। यह घाव उम्र भर भरने वाला नहीं। तुम मुझे क्षमा कर दो सोमा।"

"क्षमा की क्या बात है अक्षय ! मेरी शुभ कामनाएँ तुम्हारे साथ हैं—ईश्वर तुम्हारा बड़प्पन स्थिर रखे और आने वाली रानी तुम्हारे अनुकूल हो।"

"पिता जी ने यह उपहार भेजा है, इसे स्वीकार करो।"

"यह तो पिता जी को ही दे दो।" सोमा ने रूखेपन से कहकर उपहार लौटा दिया।

◇ ◇ ◇

सोमा का विवाह धूमधाम से हो गया। वकील साहब ने शहर के सम्मानित नागरिकों को बरातियों के स्वागत के लिये आमंत्रित किया था। परिणाम यह हुआ कि अमर की बरात के २० अतिथियों का स्वागत करने के लिये सौ से अधिक सम्मानित व्यक्ति उपस्थित थे।

सोमा को दर्जनों कीमती उपहार मिले। दहेज में उपहारों की संख्या ही अधिक थी। अमर के पास देने को कुछ न था। वह प्रायः खाली हाथ ही आया था। अपने वेतन के दो सौ रुपयों में वह अपने वृद्ध माता-पिता का भी भरण-पोषण करता था। शहर के प्रतिष्ठित वर्ग ने अमर की इस गरीबी की आलोचना भी की। किन्तु सोमा के पिता मुंशी जी को अमर की इस ग़रीबी पर भी नाज था। अमर की सौम्य मूर्ति, उस की शालीनता और उसकी कलाकारिता पर मुंशी जी मुग्ध थे। उनका रोम-रोम प्रसन्न था।

विवाह के बाद सोमा की डोली अमर के उस घर पर आयी, जिसे घर कहते संकोच होता था। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो उसे तबेला कह सकते थे। अमर का घर बेला रोड के बँगले से अधिक दूर न था। उसकी स्थिति समझने के लिये परिस्थिति जान लेना जरूरी होगा।

राजपुर रोड पार करके तीस हजारी का मैदान आता था। उसी मैदान के सामने जो सड़क पुलबंगस की ओर जाती थी उसके किनारे पाँच दुकानें टीन की बनी हुई थीं। एक भड़भूजे की दुकान थी, दूसरी बेंत की कुर्सियाँ बनाने वाले की, तीसरी में टीन के बर्तन, स्टोव और पंखे मरम्मत करने वाला एक कारीगर बैठता था। चौथी दुकान सब्जी वाले की थी जहाँ सब्जीमंडी के बचे-खुचे फल सस्ते में बिकते थे और पाँचवीं में एक बनिया बैठता था, जो इत्र हिना से लेकर सलेट-पेंसिल तक सब चीजों का मिट्टी के कसोरों में वर्गीकरण करके रखता था और बैटरी के बल्ब से लेकर कोयले की बोरी तक सब कुछ ग्राहक की फरमाइश पर हाज़िर कर देता था।

इन दुकानों के बीच में एक चौड़ा सदर दरवाजा था, जो एक बड़े आँगन में खुलता था। आँगन में फूल-पौधे नहीं लगे थे, ऐसी अनावश्यक चीज़ों के लिये उस स्थान का दुरुपयोग बिल्कुल नहीं किया गया था। वहाँ के इंच-इंच जगह का उपयोग विशुद्ध व्यापार की दृष्टि से हुआ था। चार-पाँच इक्के वालों के घोड़े बँधते थे और शाम को उन घोड़ों को नहलाया भी आँगन के नल पर ही जाता था। उस आँगन को अश्वशाला कह दिया जाय तो अधिक उपयुक्त होता।

बेला रोड के कुंजों में चहकने वाली सोमा की डोली उसी अश्वशाला में उतरी। उस समय सोमा के हाथ में जो 'ईवनिंग इन पेरिस' में भीगा रेशमी रूमाल था वह बहुत काम आया। रूमाल की सहायता से अपने नासिका-छिद्रों को पूरे बल के साथ बन्द करते हुए सोमा ने जब डोली से नीचे कदम रखा तो आँगन में बँधे घोड़ों की हिनहिनाहट के साथ अमर के रिश्तेदारों ने भी उसका स्वागत किया।

आँगन को उस दिन विशेष रूप से धोया गया था, इसलिये कहीं-कहीं गड्ढों में पानी जमा था। सोमा कई बार फिसलते-फिसलते बची। इस दुर्घटना से विशेष हानि तो नहीं हुई, लेकिन घोड़ों की लीद से मिले

पानी के छींटों ने उसकी बनारसी साड़ी की झालरों को जरूर अभिषिक्त कर दिया था।

उस आँगन के पार दूसरी मंजिल पर चारों ओर चार-पाँच कमरों के सेट बने थे। बीच वाला सेट अमर का था। उसमें तीन कमरे थे। शादी के मेहमानों ने सब कमरों में अपने बिस्तर बिछाये हुए थे। रात होने पर उन्हीं में से एक कमरा मेहमानों से खाली करवा लिया गया और वहीं नव विवाहित वर-वधू की सुहाग-सेज तैयार हुई।

सेज की सज्जा फूल और कलियों से हुई थी। सोमा को उन कलियों से हमदर्दी हुई। वह भी तो उन्हीं कलियों के समान एक डाल से टूटकर वहाँ आयी थी। शायद बगीचे से टूटकर सड़क की धूल में मिलने के लिये।

रात के दस बज गये...।

अमरेश ने डरते-डरते कमरे में पैर रखा। उसने देखा दरवाजे के पास एक अधखिली कली पड़ी थी। सोमा देख रही थी कि कली के मसले जाने में देर नहीं थी। मासूम कली के दुर्भाग्य पर उसके दिल में हल्की-सी आह उठी।

लेकिन ऐसा न हुआ। अमरेश ने नीचे झुककर बड़ी कोमलता से कली को हाथ में उठा लिया। आस-पास बिखरी कलियों और पंखुड़ियों को भी उसने चुना और अंजलि में भर उन्हें सेज पर बैठी सोमा के पास रख दिया।

सोमा के मन पर यह समर्पण चित्रवत् अंकित हो गया। अमरेश फूलों से प्यार करने वाला और कलियों को बचाने वाला है। अक्षय प्रस्तर-शिलाओं से टकराता झरना था तो अमर प्रशान्त जलाशय।

सोमा के मन में यह तुलना निरन्तर चल रही थी। उसे मालूम था कि अब इस तोल-माप का कुछ परिणाम न होगा; जो होना था हो चुका।

लेकिन उसका मन लौट-लौटकर अक्षय की तुलना में उलझ रहा था।

पलंग के पास एक आराम-कुर्सी पड़ी थी। अमरेश उस पर बैठ गया। बहुत देर दोनों चुप रहे। आधा घंटा बीत गया। फिर भी मौन न टूटा। सोमा कुछ देर निश्चल पत्थर-सी बैठी थक गयी तो लेट गयी। अमरेश कमरे के एक छोर से कई छोर तक कई चक्कर काटकर फिर कुर्सी पर आ बैठा।

और बैठे-बैठे छत की ओर आँख गड़ाकर खुद से ही बातें करता हुआ कहने लगा : "ऐसा लगता है, मैं स्वप्न देख रहा हूँ। मानो चाँद धरती पर उतर आया हो और मुझे बुला रहा हो। बचपन में कितनी चाँदनी रातों में मैंने चाँद से बातें की हैं। उससे मेरी पुरानी पहचान है लेकिन इस धरती के चाँद से पहचान कैसे हो ? यह समझ नहीं आता।"

भावनाओं की लहरों में ही वह डूब-तैर नहीं रहा था। दूसरे ही क्षण वह भावनाओं के स्तर से ऊपर उठकर दार्शनिक क्षेत्र में पहुँच गया। सब वस्तुओं और रसमों से दूर अनासक्त-सा होकर वह अपने ही विचारों की भँवर में गहरा डूबने लगा। उसका मन सोच रहा था :

यह विवाह भी विचित्र प्रथा है। जाने किस चीज की तलाश में घूमते-घूमते दो प्यासे प्राणी जीवन के एक ही मोड़ पर आ मिलते हैं और वहीं विराम हो जाता है। जीवन के अल्प-से जलाशय में दो पर-छाइयाँ मिटती हैं। जलाशय की झिलमिलाती तरंगें दोनों को एक रूप कर देती हैं। लेकिन क्या वे सचमुच एकाकार हो जाती हैं। एक होने के बाद भी दो अपरिचित आत्माएँ, शायद अपरिचित ही रह जाती हैं। आत्मा का रहस्य कौन जान सकता है ? जीवन इन्हीं रहस्यपूर्ण परछा-इयों के मेल का नाम है।

बहुत देर और भी चुप्पी रही। थोड़ी देर बाद अमर ने देखा, एक

कोने में वीणा पड़ी है। चुप्पी का यह बहाना ढूंढ़ते ही वह खिल उठा, बोला : "हमसे बोलोगी तो नहीं तुम, वीणा तो बजा दो। रात तो काटनी ही है किसी तरह।"

यह कहकर उसने वीणा उठाकर सोमा के पास रख दी। सोमा ने वीणा को छुआ भर था कि अमरेश ने उसकी अँगुलियां उठाकर तारों पर रख दीं।

वीणा के तारों पर से अँगुलियां हटाये बिना ही वह बोली : "मुझे बजाना नहीं आता।"

अमरेश ने उठकर सोमा का हाथ अपने हाथ में लिया और उसकी अँगुलियाँ छूकर कहने लगा : "तुम्हारी अँगुलियों पर खिचे मिजराब के निशान बता रहे हैं कि तुमने बरसों इन तारों से खेला है। मुझसे संकोच है तो लो मैं बाहर चला जाता हूँ। मैं बाहर से ही इसकी झंकार का रस लूंगा।"

यह कहकर वह सचमुच बाहर चला गया। सोमा को अपनी चुप्पी पर पछतावा हुआ, लेकिन वह नहीं बोली और सोने का यत्न करने लगी।

पहली रात की प्रथम प्रणय-कथा यहीं समाप्त हो जाती तो सोमा और अमर दोनों को पश्चात्ताप होता। आखिर जीवन में यह रात एक बार ही आती है। दुलहिन का पहला प्रेम पति को पहली रात एक बार ही मिलता है। वह रात जिन्दगी में दूसरी बार नहीं आती। दूसरी रात का चाँद पहले-सा नहीं रहता। दूसरी रात का हृदय पहले-सा नहीं रहता। यही वह रात है जो जीवन में केवल एक बार आती है। आम तौर पर यह रात एक सुहाने गीत की तरह बहुत जल्दी बीत जाती है। पल भर में आठों पहर बीत जाते हैं और भोर हो जाती है।

लेकिन अमर और सोमा की यह सुहागरात इतनी छोटी नहीं थी। वह पल-पल लम्बी होकर बीत रही थी।

दूसरों के लिये वह रात अन्धेरी थी, लेकिन नये वर-वधू के लिये तो उसके कण-कण में रंग भरा था जो हर पल बदल रहा था।

अमर के बाहर जाने के बाद सोमा ने कमरे को ध्यान से देखा। कमरे में चारों ओर कई कलात्मक चित्र टँगे थे। उन सब पर अमर का नाम लिखा था। अल्मारियों में पुस्तकों की पंक्तियाँ सजी हुई थीं। उन-पर नम्बर लगे हुए थे। मेज पर एक फाइल थी, जिसमें किसी आधी लिखी पुस्तक की पांडुलिपि पड़ी थी। एक ओर कलमदान तथा कुछ ब्रुश पड़े थे और रंगों की ट्यूबें सजाकर रखी हुई थीं।

सब चीजों को उड़ती नजर से देखकर सोमा फिर आँखें बन्दकर सोने का यत्न करने लगी। लेकिन उन आँखों में तो अतीत की स्मृतियों और भविष्य के स्वप्नों की भीड़ लग रही थी। उनमें नींद कहाँ से आती ?

फिर भी सोमा आँखें बन्द करके लेटी रही।

अमर ने यह सोचकर कि सोमा सो गयी है, फिर अन्दर आने का साहस किया। उसने फूलों की शैया पर जिस उर्वशी को देखा, वह इस पृथ्वी की देवी है या आकाश से उतरी है, यह जानना ही वह भूल गया। उसके उन्नत वक्ष से आंचल सरक गया था। वेणी के बन्धन शिथिल हो गये थे और उसकी हंस की तरह शुभ्र ग्रीवा की रोमावलि दक्षिण पवन के प्रहार से चंचल हो उठी थी। शयनकक्ष असंख्य नव-कलिकाओं की मादक गन्ध से भर गया था।

चित्रकार के रूप में उसने कई बार ब्रह्मा की सबसे अधिक माया-मयी कृति नारी-देह की रेखाओं का चित्रण किया था। किन्तु वे रेखाएँ कभी प्राणवान हो जायेंगी, इसकी कल्पना भी नहीं की थी। आज उसकी कल्पना साकार हो गयी थी। विश्व का सब सौन्दर्य सिमटकर उस शैया-शायिनी युवती के अंक में भर गया था। अमर को आश्चर्य हुआ, कुछ घंटे पूर्व वही युवती अजनबी थी और अब···?

आज वही उसकी विवाहिता स्त्री है। आज उसके हाथ विश्व के इस सबसे गहन रहस्य का उद्घाटन कर सकते हैं।

इस कल्पना से उसकी धमनियों में रक्त का प्रवाह बढ़ गया। उसके अँग-अंग में एक सुखद उष्णता और अजस्र स्फूर्ति-धारा उमड़ पड़ी। उसे नहीं मालूम कब वह सोमा की शैया के पास गया और कब उसके अधर सुराही-सी गरदन के नीचे मांसल कन्धों पर झुक गये।

सोमा उस चुम्बन-प्रहार से चौंक गयी, ग्रीवा से हटे आंचल को उसने कसकर लपेट लिया और सिमटकर करवट ले ली।

कुछ देर अमर चुपचाप यह लीला देखता रहा। सोमा के इस सिमटने-सँभलने की अदा ने अमर को और भी आतुर कर दिया।

उसके अधीर हाथों ने सोमा के कन्धों का स्पर्श किया। उसकी अंगुलियाँ सोमा की ग्रीवा पर घूम रही थीं।

सोमा ने करवट बदलते हुए व्यथा-दग्ध स्वर में कहा : "सिर में बड़ा दर्द है, नींद आ रही है।"

अमर की ऊष्मा सोमा के इस कवच वाक्य के आघात से सर्द निराशा में बदल गयी।

घड़ी ने एक टकोर दी। पराजित अमर सोमा को सेज पर अकेला छोड़ बाहर आ गया। सुहाग-सेज की अधखिली कलियाँ देवी पर अर्पित हुए बिना मुरझा गयीं।

पहली रात का सुहाग-गीत अधूरा ही रह गया।

◆ ◆ ◆

दूसरी रात फिर अमर ने साहस किया। पूछा : "सिर दर्द कैसा है?"

"ठीक है।"

उत्तर सुनकर अमर की आशा जागी।

उसने सोमा का हाथ अपने हाथों में लेकर कहना शुरू किया :

"सोमा ! मुझे तो तुम अपने से इतना दूर रखती हो कि आँखों का भी स्पर्श नहीं होने देती। इस चाँदनी में भर नजर चाँद को देखने तो दो।"

"भर नजर देखने से क्या होगा, क्या करोगे ?"

"देखकर यह जानूँगा कि शाम को आकाश के मेघ-खंडों में जो अरुणाई भर जाती है, वह तुम्हारे इन रक्ताभ कपोलों की लाली से कम सुन्दर है या नहीं।"

"मैं जानती हूँ तुम कवि हो।"

"तो क्या उसीकी यह सजा है ?"

"नहीं, मगर तुमने तो कभी ध्यान से देखा भी नहीं मुझे ! इतना देखना तो तुम शादी से पहले ही कर चुके थे।"

अमर ने कहा : "नहीं, मेरी आँखें जब तुम्हारी तरफ देखती हैं तो कुछ भी नहीं देख पाती। कुछ ऐसी मदहोशी-सी छा जाती है कि शेष सब धुंधला हो जाता है। पर्वतीय उपत्यका से ऊपर उठते अभ्र की तरह उसका रूप-रंग पल-पल बदलता लगता है। सच कहता हूँ, अभी तक तुम्हारे चेहरे की कोई भी रूप-रेखा नहीं बना पाया हूँ। एक सप्तरंगी कोहरा प्रतिक्षण नये रूपों में ढलता रहता है, कहीं दृष्टि स्थिर नहीं होती। बस, इतना ही जानता हूँ मैं तुम्हारे रूप के संबंध में ! रेखाओं के आकार में तो उसे बाँध ही नहीं पाया अब तक।"

"जानती हूँ तुम चित्रकार भी हो।"

"वह भी बहुत कच्चा हूँ। पक्का चित्रकार होता तो अच्छा था, कुछ बना तो पाता।"

इतने में खिड़की से चाँद का प्रकाश सोमा के चेहरे पर आ पड़ा।

सोमा ने कहा : "देखना है तो उस चाँद को देखो।"

अमर ने उत्तर दिया : "शादी से पहले यही देखा करता था।

चाँदनी रातों में आधी-आधी रात जमुना-किनारे बिता देना मेरा नित्य का प्रोग्राम था। मित्रों से कहा करता था : बागों के इन झूमते फूलों और आस्मान की हँसती चाँदनी में विचित्र मादकता है। लेकिन शादी के बाद देखता हूँ कि शरद के चाँद की मधुर चाँदनी, फूलों की मादक सुवास, जमुना के घाटों से छूकर बहती लहरों की चंचलता, निर्जन में बने मंदिर की आरती का गुंजन, सब सिमटकर सोमा, तुममें समा गया है। मानो विश्व-सौंदर्य की समस्त चेतना तुम्हारे अधरों में पुलक उठी है।

घड़ी में बारह की टंकार ने इन बातों को भंग कर दिया।

अमर ने सोमा का बायाँ हाथ फिर अपने हाथों में ले लिया। उसे उठाकर वह अपने ओठों तक ले गया और उस पर अपना प्यार अंकित कर दिया।

सोमा ने हाथ नहीं खींचा, इससे अमर का उत्साह बढ़ा।

वह पलंग पर झुका और इससे पहले कि सोमा कुछ कहे, उसके हाथों ने सोमा को आलिंगन में कसकर बाँध लिया था।

लेकिन सोमा ने अमर के ओठों पर हाथ रखकर उसे पीछे हटा दिया।

अमर निराश नहीं हुआ। इसे प्रणय-लीला का ही अंग मानकर वह और भी उत्तेजित हो गया था। उसके रोम-रोम से आग की लपटें निकल रही थीं।

लेकिन इस अधीरता में भी वह शिष्टता को नहीं भूला।

कमरे में उस समय छोटी हरे रंग की बत्ती टिमटिमा रही थी। उसे बुझाने को उसने हाथ बढ़ाया ही था कि सोमा ने कहा :

"नहीं उसे मत बुझाना।"

"क्यों ?" अमर ने चौंककर पूछा।

"मुझे डर लगता है।"

"किससे ?"

"अँधेरे से।"

"क्यों, मैं भी तो तुम्हारे पास हूँ, डर किससे लगता है।"

"तुमसे", कहकर सोमा ने करवट ले ली।

अमर ने समझा सोमा ने यह बात उपहास में कही है। वह खिड़कियाँ बन्द करने लगा।

"न न खिड़कियाँ बन्द न करो। पहले ही गरमी बहुत है।" सोमा ने व्याकुलता से कहा। गरमी के बहाने में सोमा क्या कहना चाहती थी यह अमर भी समझ गया।

"मैं पंखा चला दूँगा" अमर ने भी उसके दाँव को व्यर्थ करने के लिये युक्ति पेश कर दी।

"मुझे पंखे से सर्दी लग जाती है।" सोमा ने दूसरा बहाना पेश किया।

अमर समझ गया—खूब समझ गया कि सोमा झूठ-मूठ बहाने नहीं कर रही। कोई और होता तो विवाह के बाद भी ऐसी मजबूरियों को धैर्यपूर्वक स्वीकार न करता किन्तु अमर अपनी ही संयम की भट्ठी में जलना, तपना जानता था।

वह फिर सोमा के निकट आ बैठा। सोमा उसके हाथों को सहलाकर ठण्डा करते हुए बोली:

"आप अभी आराम कीजिये। कल घूमने चलेंगे तो बातें करेंगे।"

मधुमिलन की तीन रातें इसी तरह हाथों को सहलाते, सेंकते बीत गयीं। पूर्ण मिलन नहीं हुआ। सोमा ने समर्पित होने से अस्वीकार कर दिया। अमर संयम का विष पी-पीकर अपनी आग बुझाता रहा।

तीन रातें इसी तरह बीतीं। दोनों शयन-कक्ष में आते। प्यार की बातें होतीं किन्तु दूर-दूर से।

चौथे दिन सोमा को अपने घर जाना था।

जाने से पहले उसने अमर से कहा :

"आप नाराज तो नहीं ?"

"किस बात से ?" अमर ने सब जानते हुए भी पूछा ।

"मेरी सभी बातों से", सोमा असली बात पर परदा डालते हुए टाल गयी ।

अमर ने अपनी बेबसी को सूखी हँसी में बदलते हुए कहा :

"तुम खुश हो तो मैं खुश हूँ ।"

सोमा ने अमर के रूखे हाथों को अपने रूई से मुलायम हाथों में लेकर दवाते हुए कहा : "मेरी मूर्खताओं को माफ कर देना ।" इससे अधिक वह कुछ न कह सकी ।

तीन रातें अमर के पास रहने के बाद वह फिर बेला रोड के बँगले में आ गयी ।

◇ ◇ ◇

सोमा पहली बार पति-गृह से वापस आयी थी । माँ से गले मिलकर खूब रोयी । प्रथम बार मातृ-गृह आने पर सभी लड़कियाँ रोती हैं, मगर सोमा के रोने में गहरा दर्द छिपा था । माँ पार्वती ने यह बात सोमा की सिसकियों से जान ली थी । उसकी सूजी आँखों ने विना कहे सब कह दिया था ।

बहुत कहने पर सोमा को कहना पड़ा : "माँ, वह स्वयं तो बहुत अच्छे हैं लेकिन जिस घर में रहते हैं, वह आदमियों के रहने योग्य नहीं । अब घर बदलना भी असम्भव है । उसी घर में उनके आसरे छः प्राणी और पलते हैं । बड़े परिवार के योग्य लम्बी-चौड़ी जगह चाहिये और ऐसी लम्बी-चौड़ी जगह ऐसे मुहल्ले में ही मिल सकती है जैसी वह है ।

अच्छे घर के लिये काफी रुपया चाहिये। इतना रुपया कहाँ से आये? प्रोफेसरी से जो रुपये मिलते हैं उनसे घर का गुजारा ही मुश्किल से चलता है। नये घर के लिये पगड़ी देनी पड़ती है। इतना रुपया कहाँ से आये?"

मुंशी जी ने भी सोमा की कथा सुनी, सोमा को सान्त्वना दी। सोमा ने दिन-रात उसी चिन्ता में बिता दिये। उसका मन हार मानने वाला नहीं था। उसने अपने निश्चय को दोहराया कि वह स्वयं अमर को दुनिया के इस संघर्ष में सहायता देगी।

सोमा सोचती रही, अमरेश जितना कल्पना-प्रिय था, वह उतनी ही व्यावहारिक थी। उसकी पैनी आँखों ने अमरेश के कल्पना-जगत् का सूनापन देख लिया था। अमर का स्वप्न-संसार केवल काव्य तक सीमित था। शब्दों के ताने-बाने से ही वह इन्द्रपुरी का निर्माण करता था और सोमा को उर्वशी मान स्वयं कल्पना के स्वर्ग का सम्राट् बनता था।

अमरेश दो सौ रुपये माहवार का आदमी है, यह बात सोमा को विवाह से पहले ही मालूम थी। अमरेश ने स्वयं यह बात खोल दी थी। सोमा को इससे कुछ कष्ट नहीं हुआ था। उसने सोच लिया था, वह अपने पुरुषार्थ से अपना भाग्य बनायेगी।

प्रथम भेंट में ही उसने देख लिया था, अमरेश में प्रतिभा है, कार्य-क्षमता है, केवल व्यावहारिकता और धन कमाने के संकल्प में शैथिल्य है। सोमा ने सोचा: इसकी दीक्षा वह स्वयं देगी। वह अमरेश को चतुर-चुस्त बना देगी। व्यापार-कुशल बना देगी। और परिवर्तन करते-करते वह अमर को क्या से क्या बना देगी और वह खुद क्या से क्या बन जायेगी, इन स्वप्नों में डूब जाती थी।

इसलिये अपने मैके से लौटकर दूसरी बार जब वह घर आयी तो कई योजनाएँ बनाकर लायी थी। उनमें से कुछ पंचवार्षिक थीं, कुछ द्विवार्षिक और कुछ मासिक भी थीं। उनका लक्ष्य यही था कि अमर

अधिक से अधिक धनोपार्जन कर सके। यह काम अमर के गुणों का अधिकाधिक आर्थिक उपयोग से ही हो सकता था। आते ही उसने इन योजनाओं को कार्यान्वित करना शुरू कर दिया।

दूसरे दिन से ही उसका संकेत मिलने लगा।

सुबह स्नान के लिये जमुना पर जाने को अमर तैयार हुआ तो सोमा ने कहा :

सोमा : "जमुना पर क्यों जाते हैं आप ?"

अमर : "जमुना पर ? यों ही बरसों से जा रहा हूँ।"

सोमा : "क्यों जा रहे हैं ? स्नान तो घर में भी हो सकता है। नल में पानी आता है।"

अमर : "जमुना पर ही आकर्षण कितने हैं, जमुना के नीले जल पर उदय होते सूर्य की स्वर्णिम छवि को प्रणाम करके ही मैं अपना दिन शुरू करता रहा हूँ।"

सोमा ने अमर की काव्य-प्रेरणा पर अधिक ध्यान दिये बिना कहा :

"और किसलिये ?"

अमर : "पार गाँव से दूध-दही की बहिया लेकर आते हुए ग्वाले जब मुक्त कंठ से गाते तो जमुना का प्रशान्त पानी भी नाच उठता है और तट को छूकर बहते पानी की छम-छम में मैं सुध-बुध खोकर मस्त हो जाता हूँ।"

अमर इस सुन्दर भावना पर सोमा से सराहना की आशा करता था किन्तु सोमा ने निराश कर दिया।

"यह मस्ती बड़ी महँगी पड़ती है आपको। इस समय आप कुछ लिखकर अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं," सोमा ने कहा।

अमर को मानो नयी बात का पता लगा हो, कहने लगा : "इधर तो मेरा ध्यान ही नहीं गया सोमा ! सचमुच उस समय तो मैं बहुत लिख सकता हूँ। तुमने बड़ी अच्छी बात सुझाई। कल से यही

करूँगा। चलो आज का दिन अन्तिम दिन सही।"

अमर जमुना की सैर में जितना समय बरबाद करता था उससे भी अधिक वह अपने से बातें करने और मित्रों के साथ इधर-उधर जाने में नष्ट करता था।

सोमा ने पूछा : "एक बात तो बताओ, केशव कौन है, क्या करता है? कब तक रहेगा?"

अमर ने बड़े भोलेपन में कहना शुरू किया :

"यहाँ छः महीने हुए काम देखने आया है। वह मेरा बचपन का साथी है, हम दोनों कालेज में गहरे मित्र थे और हमने प्रण किया था कि जहाँ तक बनेगा एक दूसरे के सुख-दुख में हाथ बटाते हुए सदा साथ रहेंगे।"

'सदा साथ रहेंगे' शब्द सुनकर सोमा का धैर्य जाता रहा। उसने कहा : "यह प्रण तो अब नहीं निभ सकेगा। वह तो अकेला है। आप पर तो जिम्मेदारियाँ आ गई हैं।"

अमर : "तो क्या करूँ, जैसा कहो कर दूँगा।"

सोमा : "उसे अपने घर जाना चाहिये। उसके भविष्य के लिये भी यही ठीक है।"

अमर : "तुम ठीक कहती हो। मैं उसे कह दूँगा।"

सोमा : "तुम तो इस कहने में महीनों लगा दोगे। उसे जल्दी ही विदा देनी होगी।"

अमर : "जब तक कोई ठिकाना नहीं बनता, वह मेरे साथ है। जब बन जायेगा तो चला जायेगा।"

सोमा : "इसका मतलब है कि ये अभी दो-चार महीने साथ ही रहेंगे। पहले ही जगह की तंगी है, एक ही कमरे में हम गुजर करते हैं। मगर मैं जगह की शिकायत नहीं करती, उसके साथ रहने से तुम्हारा समय बातों में व्यर्थ नष्ट होता है, यही चिन्ता है मुझे। उस

समय कुछ और काम करके तुम अपनी कमाई बढ़ा सकते हो। पहले ही थोड़ा-सा समय मिलता है, वही इस तरह व्यर्थ हो जाये तो दुःख होता है।"

लाचार दो-चार दिन में अमर को अपने मित्र को घर से विदाई देनी पड़ी। अपने बचपन के प्राण-सखा से विदा लेते हुए अमर को आन्तरिक कष्ट हुआ लेकिन सोमा की बात टालने का साहस उसमें नहीं था।

◇ ◇ ◇

सोमा को प्रसन्नता थी कि उसकी योजना धीरे-धीरे फलित हो रही है।

दो विघ्न दूर हो चुके थे, अब उसकी पैनी दृष्टि घर की अस्त-व्यस्त व्यवस्था पर भी पड़ी। इस अव्यवस्था से भी अमर का समय नष्ट होता था।

घर की सम्पूर्ण व्यवस्था और उसकी संचालन पद्धति का पर्यवेक्षण करने के बाद सोमा ने अपनी कार्य-शैली निर्धारित कर ली और एक दिन जब अमर को दफ्तर पहुँचने में देर हो गयी तो सोमा ने रसोई में पहुँचकर माँ जी से कहा: "पहले इन्हें थाली परोस दीजिये। इनके दफ्तर जाने का समय हो गया।"

माँ जी ने उत्तर दिया: "अमर का खाना अभी परोसती हूँ, लेकिन पहले अमर के पिता जी को परोस लूँ।"

सोमा का मुँह फूल गया, बोली: "कचहरी पहुँचने में देर हो जायेगी तो विशेष हानि न होगी लेकिन इन्हें तो समय पर पहुँचना ही चाहिये। पहले इन्हें ही खाना परोस दीजिये।"

माँ को यह बात बुरी लगी। उसने कहा : "अच्छा, उसे ही दे देती हूँ। पिता जी आज बिना खाये ही जायेंगे।"

इस बात पर सोमा बिगड़ गई, बोली : "आपको इनकी फिकर ही नहीं। देर हो जाती है तो, कल से खाना मैं बना दिया करूँगी। मेरा जिम्मा है कि सबको समय पर खाना मिल जाया करेगा।"

माँ ने कहा : "तुझे अभी क्या मालूम कि किसे कैसा खाना रुचता है। तेरी ननद लता का शौक ही निराला है। उसे जब तक आलू की परोठी नहीं मिले, खाना ही नहीं खाती। ये सब झगड़े तू कहाँ निपटायेगी। मैं भी खाली तो बैठती नहीं। तू भी जानती है, सुबह चार बजे उठकर दही विलोती हूँ, मक्खन निकालती हूँ, फिर सबके लिये अलग-अलग चीजें बनाती हूँ। किसीको चाय चाहिये तो किसीको काफी, तू भी धीरे-धीरे सब समझ जायेगी, बाद में तुझे ही तो सँभालना है। तेरे आराम के लिये ही कर रही हूँ। मुझे तो अच्छा ही है कि मेरा भार हल्का हो जाय और तू ही घर का इन्तजाम कर ले।"

सोमा ने कहा : "मेरे हाथ में हो तो सबको एक-सा खाना मिले। जिसका जी चाहे खाये, जी चाहे न खाये। सबका अलग-अलग शौक पूरा करने में समय की बरबादी होती है। आज-कल समय की बड़ी कीमत है। इन्हें थोड़ा और समय मिले तो ऊपर की आमदनी भी कर सकते हैं। मैं तो इसीलिये कह रही हूँ।"

माँ जी ने सोमा की चुनौती मान ली। दूसरे दिन ही सोमा ने रसोई का सब काम सँभाल लिया और नवीन पद्धति प्रारम्भ कर दी।

इस नये इन्तजाम से घर में नये कायदे बन गये। घर का मक्खन बन्द हो गया। बाजार से 'पोल्सन' आने लगा। पिताजी, जो मक्खन के साथ रोटी लेते थे अब केवल लस्सी के साथ रोटी खाकर दूकान चले गये। मक्खन बिलोने में जो समय नष्ट होता था उसकी बचत हो गयी।

उन्होंने शिकायत का एक शब्द भी मुख से नहीं कहा। लेकिन सोमा की ननद को सोमा का इस प्रकार हस्तक्षेप करना और मनमानी सत्ता ग्रहण कर लेना चुभ गया। उसने हठ पकड़ लिया। वह रोज सुबह आलू के पराठे आध पाव घर के मक्खन के साथ लेती थी। उसे जब यह नहीं मिला तो एक दिन अनशन कर गयी। कहने लगी : "मेरे लिये आध सेर दूध अलहिदा जमा दिया करो ; मैं खुद उसमें से मक्खन निकाल लिया करूँगी।"

सोमा यह इशारा समझ गयी। उसने कहा : "अच्छी बात है, कल से ये—अमर भी—बाजार में खा लिया करेंगे।"

माँ ने भी यह बात सुनी। लता का तार-स्वर सुनकर वह भी आ गयी थी। माँ को यह बात कब बरदाश्त होती कि अमरेश बाजार का खाना खाये। उसने कहा : "ऐसा करो बहू, बाकी सब जैसे चलता है, चलने दो। तू अमर के लिए जब चाहे, खाना बना लिया कर, इसमें तुझे भी पूरी आजादी है। कोशिश करूँगी कि तुम सबको वक्त पर खाना मिल जाया करे।"

सोमा माँ का निषेध सुनकर रुआँसी हो गयी, फिर भी दुराग्रह में बोली : "नहीं माँ, मैं खुद बना लिया करूंगी। मैं अपना भार किसी दूसरे के कन्धों पर नहीं डालना चाहती।"

माँ ने कातर किन्तु हठ स्वर में कहा : "बहू, आज २५ साल से जो भार उठाती आयी हूँ, वह आज भी मेरा ही भार है। अमर के लिये खाना बनाना मुझे भारी थोड़े ही लगेगा। जैसे अब तक करती आयी हूँ, वैसे ही आगे भी कर लूंगी। मेरे लिये जसा अमर है वैसे ही तू है। जो कुछ उसके लिये किया है वही तेरे लिये करूँगी। आगे तेरी जैसी इच्छा। तू जब चाहे, जैसे चाहे बनाकर खुद खा भी सकती है और खिला सकती है। तेरा ही घर है।"

लेकिन सोमा को इससे सन्तोष न हुआ। नतीजा यह हुआ कि

दोनों ने अलग-अलग घर ले लिया । सोमा की योजना का यह तीसरा परिणाम था जो अमर को सहना पड़ा ।

इसके बाद भी कई प्रकार के विग्रह हो गये । दोनों ओर से मन मैला होता चला गया और आखिर अमर को कहना पड़ा :

"माँ, अब मुझे जुदा रहने की इजाज़त दो । दोष किसीका नहीं । मेरा ही है, मैं ही इस योग्य नहीं कि साथ रहने का सौभाग्य ले सकूं ।"

माँ ने अमर के सिर पर हाथ रखा और आशीर्वाद दिया : "अच्छा बेटा, तेरी यही इच्छा है तो यही कर । रोज मिलने जरूर आ जाया कर ।"

सोमा से बोली : "बहू, मेरा घर तो वही है जहाँ मेरा बेटा रहे । एक के बजाय दो घर हो जायेंगे तो भी मुझे दुःख नहीं, लेकिन दिल में भेद नहीं रखना । मैं बहुत पढ़ी-लिखी नहीं हूँ । कुछ ग़लती हो गई हो तो माफ करना ।"

सोमा फूट-फूटकर रो पड़ी । लता की आँखों में भी आँसू भर आये ।

अमर और सोमा नया घर बसाने चल दिये । माँ अपने बेटे और बहू को बिछुड़ते देखती रही और उसे याद आया एक दिन जब वह भी यों ही नया नीड़ बसाने चली थी ।

◇ ◇ ◇

अमर ने मकान तलाश करने को दिल्ली के सब गली-कूचे छान मारे । आखिर सब देखने के बाद उसने जो पहला मकान लिया वह मोरी दरवाजे के पास निकल्सन रोड की एक गली में १५ रुपया माह-

वार का था। उसके ऊपर वाली छत पर सितारावाई नाम की एक अधेड़ स्त्री रहती थी। अपनी जवानी में वह सेठ बापूमल की उपपत्नी थी। सेठ ने वह मकान उसके लिये बनवा दिया था। लेकिन अब उमर बढ़ने के साथ जब उसकी माहवारी बक्शीश कम हो गयी थी, उसने अपने लिये ऊपर वाली परछानी में चिकें डालकर गुजर कर लिया था और नीचे की बैठक किराये पर दे दी थी।

मकान के बाहर जो पान वाली बैठती थी वही उस मकान की और सितारावाई की एजेन्ट भी थी। अमर ने वह मकान तो लिया मगर जब उसके आँगन में से ऊपर जाने वाली सीढ़ियों पर सितारावाई के तबलची, बबरची चढ़ने लगे और बूढ़े खूसट रईसों का आना-जाना शुरू हुआ तो सोमा उस मकान से तंग आ गई और अमर की नये मकान की तलाश शुरू हुई।

कालेज से आने के बाद वह नये मकान की दौड़-धूप में निकल जाता और वहाँ से आकर आधी-आधी रात ऊपर की आमदनी के लिये अपने अधलिखे उपन्यास की पांडुलिपि पर जुट जाता।

दो-चार दिन की दौड़-धूप के बाद दूसरा भी मकान मिला। यह मकान सब्जीमन्डी के ट्राम-टर्मिनस के पास शोरेवाली कोठी का एक हिस्सा था। उसकी टूटी-फूटी दीवारों पर कागज लगाकर सोमा ने उसे खान्दानी लोगों के रहने योग्य बनाने का तो उपाय कर लिया किन्तु उस मुगलिया जमाने की खंडहर कोठी के दायें-बायें, और पीछे सारी मंडी का जो कूड़ा-करकट जमा हो जाता और कभी-कभी मरे हुए पिल्ले की लाश से जो सड़ांद उठती—उसका वह कोई उपाय न कर सकी और आखिर वहाँ से भी एक महीने बाद ही कूच करना पड़ा।

आखिर तीसरा मकान नये बाजार के एक सिरे पर मिला। घर क्या एक छोटा-सा कमरा था वह, जो नीचे वाले दफ़्तर का हिस्सा था। उसकी छत के एक कोने में ही धूप के समय चारपाई खड़ी करके

सोमा छाँह कर लेती और रसोई बना लेती थी।

◇ ◇ ◇

सोमा घर के सब काम अपने हाथों करती थी। कभी-कभी एक समय भूखे भी रह जाते थे तो भी हँसकर समय निकाल लेते थे।

अमर अपने समय का पूरा उपयोग करता था। सोमा एक भी क्षण व्यर्थ नष्ट करने नहीं देती थी। अथक परिश्रम करके भी वह अमर को लिखने-पढ़ने की पूरी सुविधा देने में तत्पर थी।

अमर लिखते-लिखते जब बहुत थक जाता तो सोमा उसके पास आ बैठती और कहती : "सुनाओ क्या लिखा है ?" काव्य के रस-भरे गीत सुनाते हुए अमर की सब थकान मिट जाती और सोमा से आग्रह करता कि वह स्वयं इन गीतों को गाकर सुनाये। सोमा वीणा ले आती और अमर के लिखे गीतों को मधुर स्वर में गाती। उन्हें सुनकर अमर को नया उल्लास मिलता।

महीनों के परिश्रम से वह उपन्यास लिखा गया। दोनों मिलकर कार्य-क्रम बनाने लगे कि पुस्तक की आय से घर के लिये क्या-क्या चीजें खरीदी जायेंगी। रेडियो कहाँ रखा जायेगा और नया डबल बेड किस जगह ठीक रहेगा। खिड़कियों पर पर्दे किस रंग के होंगे। इन सपनों से सोमा खिल उठती थी।

लेकिन धीरे-धीरे सपनों के ये बुलबुले मिटते गये। कोई प्रकाशक रुपया देकर पुस्तक प्रकाशित करने को तैयार नहीं हुआ। अमर संकोची स्वभाव का था। दो-एक परिचित प्रकाशकों के पास जाकर ही उसने हार मान ली।

लेकिन सोमा हार मानने वाली नहीं थी। उसने कहा: "मैं खुद प्रकाशक के पास जाऊँगी।"

"तुम जाओगी ?" अमर ने आश्चर्य से कहा। "तुमसे यह न होगा।"

"क्यों न होगा ?"

"इधर आओ, बताऊँ।"

सोमा पास आयी। अमर सोमा की चिबुक ऊपर उठाकर प्यार से बोला:

"इतनी भोली प्यारी आँखें, भोला-सा मुँह, कमल की पंखुड़ियों-से ओठ। इनसे सौदे की बातें कहाँ होंगी। इनसे यह नहीं हो सकेगा।"

"और क्या हो सकेगा इनसे ?"

"इनसे", कहकर अमर ने प्यार-भरा चुम्बन ले लिया। सोमा अब भी शरमाती थी। सो, आज वह शरमाई तो अधिक सुन्दर लगी अमर को। उसकी देह पिछले दिनों भर गयी थी। आँखों में परिणीता का नया रस छल-छला उठा था। अमर के बाहुपाश से छूटकर वह बोली:

"तुम लोग खुद ही औरतों को निकम्मा बनाते हो, पहले पहल लाड़-प्यार में कुछ करने नहीं देते और बाद में शिकायतें करते हो, ये कुछ करतीं-धरतीं नहीं। तुम मुझे कुछ प्रकाशकों के नाम-पते दे दो, मैं स्वयं उनसे बात करूँगी।"

अमर ने दिल्ली के तीन मुख्य प्रकाशकों के नाम दे दिये।

◇ ◇ ◇

अमर कालेज चला गया तो सोमा बैग में अमर के लिखे उपन्यास की पांडुलिपि लेकर बाहर निकली और दरीबा की प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्था भारती भवन पहुँची।

भारती-भवन के मालिक महेशचरण ने पिछले चार-पाँच वर्षों में 'रंग महल', 'खूनी प्रेमी', 'दिल्ली के दलाल' आदि आधे दर्जन उपन्यास लिखकर प्रचुर धन कमाया था।

इन दिनों वे दूकान पर कम ही आते थे। आते भी थे तो पुस्तक-प्रकाशन के संबंध में नहीं, फिल्म-निर्माण के सिलसिले में ही आते थे। इसीलिये आज-कल उनकी दृष्टि सुन्दर पुस्तक पर नहीं बल्कि सुन्दर चेहरों पर ज्यादा गड़ती थी।

सौभाग्य से महेश जी उस समय दूकान पर ही बैठे थे। सोमा को देखते ही उन्होंने थोड़ा उठकर नमस्कार किया और कहा :

"कहिये कौन-सी पुस्तक लेनी है आपको ?"

सोमा पहले कई बार वहाँ से पुस्तकें खरीद चुकी थी।

"लेनी तो कोई नहीं, आज कोई दूसरे काम से आयी थी।" सोमा ने कहा।

"आज्ञा कीजिये, क्या सेवा कर सकता हूँ ?" महेश जी ने लखनवी अदा से पूछा।

सोमा ने कहा : "सेवा की बात नहीं, मैं कुछ बिजनेस की बात करना चाहती थी।"

"बिजनेस की ?" महेशचरण जी को आश्चर्य हुआ।

किसी सुन्दर चेहरे से बिजनेस की बात उन्होंने कई बार रात की ऐसी महफिलों में सुनी थी, जो प्रायः उनकी बैंक रोड वाली कोठी पर जमती थीं, लेकिन इस तरह खुले आम दोपहर को दूकान पर एक भद्र महिला के मुख से यह बात सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी शराब में तैरती आँखों से सोमा को ध्यान से देखा और कहा :

"फरमाइये···मैं बिजनेसमैन अच्छा नहीं हूँ किन्तु आप···जो कहेंगी ध्यान से सुनूंगा।"

सोमा ने विनम्र भाव से कहा। मैं प्रो० अमर की पत्नी हूँ। मेरे पति लेखक हैं, कवि हैं और कलाकार हैं।"

"जरूर होंगे जरूर होंगे। आपकी प्रेरणा-शक्ति से तो कोई भी महाकवि, लेखक और कलाकार बन सकता है।"

सोमा पास पड़ी कुर्सी पर बैठने लगी। महेश जी उसे अन्दर केबिन में ले गये। दोनों बैठ गये तो सोमा ने बैग से पाण्डुलिपि निकालते हुए कहा : "उन्होंने यह उपन्यास लिखा है।"

महेशचरण ने पाण्डुलिपि ले ली। कुछ पन्ने उलटे और कहा : "देखिये देवी जी··· आपका नाम क्या है ? मैं वही नाम लूंगा आपका।"

"मेरा नाम सोमा है।"

"बड़ा सुन्दर नाम है आपका 'सोमा'—सोम चन्द्र को कहते हैं। सोमरस तो मशहूर है ही—ऋषिगण सोमरस पीते थे—मैं भी कभी-कभी पीता हूँ—सोमरस सोमा बहुत सुन्दर नाम है, बहुत सुन्दर"—कहते हुए महेशचरण ने पाण्डुलिपि एक ओर रख दी और सोमा के मुख को ही एकटक ताकता रहा।

सोमा ने मेज पर पड़ी पाण्डुलिपि की ओर इशारा करके कहा : "आप इसे पढ़ना पसन्द करेंगे ?"

महेशचरण : "पसन्द तो जो आप कहेंगी कर लूंगा पर मैं सुनना ही पसन्द करता हूँ। यह मेरी आदत बन गयी है।"

"तो मैं आपको कुछ पढ़कर सुना सकती हूँ।"

"क्या कहा आपने ?"

सोमा ने दोहराया, "अगर आप चाहें तो मैं आपको कुछ पृष्ठ सुना दूं।"

महेश को कल्पना भी नहीं थी कि कोई चिड़िया स्वयं जाल-पाश में फँसने कैसे आ सकती है। ईश्वर की लीला। उसी लीलामय को हृदय से धन्यवाद देते हुए उसने बड़े विनीत स्वर में कहा : "आप सुना सकेंगी तो मैं बड़ा उपकार मानूंगा। लेकिन दूकान पर निश्चिन्तता से सुनना न होगा। आपको आपत्ति न हो तो कल आप मेरी कोठी को पवित्र

कीजिये। वहाँ पूर्ण शान्ति होगी। मुझे उम्मीद है आपको वहाँ आने में कोई संकोच न होगा। मेरी पत्नी भी आपसे मिलकर बड़ी खुश होती, लेकिन वह आज जरा बाहर गयी हुई है।"

सोमा इस प्रस्ताव पर कुछ झिझकी, लेकिन इस झिझक का उसे स्पष्ट रूप से कोई कारण दिखायी न दिया। कायर होकर पीछे हट जाना उसके स्वभाव में नहीं था। अपने साहस पर दृढ विश्वास रखते हुए उसने कह दिया : "अच्छी बात है, कल आऊँगी।" और कोठी का पता नोट कर लिया।

"नहीं आप क्यों कष्ट करेंगी, मैं गाड़ी भेज दूँगा, आप अपना पता दे दें।" कहते हुए महेशचरण ने दोनों हाथ जोड़ सिर झुकाकर अभिनन्दन किया। सोमा खुशी में नमस्कार करना भी भूल गयी, अपने सपनों में खोयी-खोयी घर लौटी।

◇ ◇ ◇

शाम को अमर घर आया तो सोमा ने सब बातें उसको सुना दीं।

अमर बोला : "उसके घर जाओगी तुम ?"

"तुम्हारी क्या राय है ?"

"मुझे तो इन लोगों से निकटता का कोई भी संबंध अच्छा नहीं लगता।"

"मेरे लिये भी ये नये नहीं, मैं इन्हें देख चुकी हूँ लेकिन मैं डरती नहीं, सामने से मुकाबिला करती हूँ।"

अमर ने कहा : "ये सामने से प्रहार करते ही नहीं। इनकी हर बात में छल-कपट होता है। इनकी शतरंज में इन्हें मात देना कठिन काम है। इनके दाँव ही ऐसे होते हैं कि पहले तो ये हमें अपना कृपाभाजन बनने

को मजबूर कर देते हैं और फिर कृतज्ञता की आड़ में हमें पूरी तरह ठग लेते हैं। इनसे तो वही व्यापार करे जो इनकी हैसियत का हो।"

सोमा ने उत्तर दिया : "भूल हमारी भी होती है। कई बार हम भी अपने अधिकार से अधिक चाहने लगते हैं। तब हमें उनकी कृपा का अवलम्ब लेना पड़ता है, दया, सहानुभूति की भीख माँगनी पड़ती है।"

अमर ने पैंतरा बदला और सोमा को अपने इरादे से हटाने के लिये उसने अधिक बलवती युक्ति दी। उसने कहा : "स्त्रियों को तो इन ठगों से स्वत्व-रक्षा का भी भय रहता है, इनसे दूर ही रहना चाहिये। मैं तो इन्हें बिना नख, पंजे और सींग वाले पशु समझता हूँ। इन्हें जो भेड़िया कहा जाता है, वह यथार्थ ही है।"

सोमा इस युक्ति से भी विचलित न हुई। उसके पास अपना ही तर्क था, बोली : "स्त्रियों का भी दोष है। मेहनत न कर केवल स्त्री होने के नाते जो धन पाना चाहती हैं वे धोखा खा जाती हैं।"

अमरेश ने सोमा को अपने इरादे पर अटल देखकर कहा : "मैं तो तुम्हारी परेशानी को सोचकर ही मना कर रहा था। मुझे क्या पता था विधाता ने इन गुलाब-सी कोमल पँखड़ियों में वज्र का-सा संकल्प दिया है। तुम्हारा मन साक्षी देता है तो मेरी ओर से निश्चिन्त रहो। मुझे तुम्हारे साहस पर भरोसा है।"

रात भर दोनों उपन्यास के विशेष स्थलों का पाठ करते रहे। अमर ने ऐसे विशेष प्रसंगों पर लाल निशान भी बना दिये, जो श्रोता को द्रवित कर सकते थे।

दूसरे दिन यथासमय एक आस्मानी रंग की डॉज सोमा को लेने आ गयी।

मुहल्ले वाले ऐसी आलीशान कार को देखकर भौंचक-से रह गये और जब उसपर अकेली सोमा को जाते देखा तब तो उन्होंने दाँतों तले उंगलियाँ दबा लीं।

अमर ने महेशचरण के बँगले तक साथ चलकर छोड़ आने का आग्रह भी किया लेकिन सोमा को इसमें भी कायरता की गन्ध आती थी।

लगभग दो मील दूर महेशचरण की कोठी थी।

महेश ने द्वार पर ही स्वागत किया और बैठक तक साथ जाकर कहा : "आपने बड़ी कृपा की—"

सोमा पाण्डुलिपि निकालकर सुनाने को अधीर हो रही थी। महेशचरण जी बोले : "थोड़ा आराम कर लीजिये।"

उसी समय नौकर ने एक गिलास लाकर कुछ पीने को दिया।

सोमा को प्यास तो नहीं थी, लेकिन इन्कार करना अशिष्टता न हो इसलिये पीने का प्रयत्न किया।

लेकिन वह तो कड़वा था। मुँह बिचकाकर सोमा ने गिलास नीचे रख दिया।

महेश जी भाँप गये, बोले : "इसमें कुछ तुरषी लगेगी लेकिन दो घूँट पीकर तो देखिये। जायका बुरा नहीं—और तासीर तो…… ।"

"नहीं क्षमा कीजियेगा। मुझसे न पिया जायेगा।" सोमा ने नम्रता से कह दिया।

"आपकी इच्छा, मैं शरबत मँगा देता हूँ।" नौकर ने शरबत लाकर दिया।

महेशचरण के आग्रह पर सोमा ने उपन्यास वाला गीत सुनाया, महेशचरण बड़े ध्यान से सुनता रहा और अन्त तक यह निश्चय नहीं कर पाया कि गीत के शब्द अधिक मीठे थे कि सोमा का स्वर, या दोनों ही।

सोमा केवल प्रशंसा सुनने नहीं आयी थी। उसने सीधा ही प्रश्न किया : "इसका क्या मूल्य दे सकेंगे आप ?"

महेशचरण ने कहा : "यों तो आप जो कहें स्वीकार है, कोई और होता तो हम पुस्तक छापने का आधा मूल्य लेखक से ले लेते। लेकिन आप हैं इसलिये आपको एक मुश्त ५०० रु० देकर कापीराइट खरीद सकता

हूँ। यह कीमत आपके लिये है, पुस्तक के लिये नहीं।"

सोमा ने भी सौदे की बात कही : "यदि कापीराइट का यह मतलब है कि इसपर आपका स्वत्व हो जाता है और आप इसका मनचाहा इस्तेमाल कर सकें, तो यह कीमत बहुत कम है।"

महेश : "लेकिन आप इसका और क्या इस्तेमाल करेंगी ?"

सोमा : "कुछ भी कर सकती हूँ। यह भी हो सकता है कि कोई फिल्म वाला कहानी ले ले।"

महेश भी चिड़िया हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे। कुछ सोच-कर बोले : "मैं स्वयं एक अच्छी फिल्म-कहानी की तलाश में हूँ। कल तक आप ठहरें तो मैं अपने एक मित्र डिस्ट्रीब्यूटर से मिलकर अपना निश्चय बतला सकता हूँ। कल आप तशरीफ ला सकेंगी ? मैं अपनी गाड़ी भेज दूंगा।"

स्वीकृति की मुद्रा में सिर हिला सोमा उठ खड़ी हुई।

महेशचरण जी ने ड्राइवर को बुलाकर सोमा को उसके घर छोड़ आने का हुक्म दे दिया।

महेशचरण जी आँखों से सोमा की रूप-सुधा पीते थे, होंठों से शराब और कानों से सोमा के मधुर गीत किन्तु तीन-तीन प्रकार का आसव भी उन्हें इतना मदहोश नहीं बना सका था कि वे व्यापारिक मोल-तोल करना भूल जाते।

इसीलिये जब सोमा ने उपन्यास पर सम्मति पूछी तो महेश जी ने सम्हलकर कहा :

"गीत तो अच्छे हैं—लेकिन कहानी में कुछ हेर-फेर करना ही पड़ेगा।"

वह आलीशान डॉज गाड़ी जब सोमा को लेकर महेश के बँगले से बाहर निकलकर राजपुर रोड से मोरी गेट की ओर मुड़ने लगी तो एक दूसरी गाड़ी से टकराते-टकराते बची।

सोमा ने चौंककर देखा, कुमार गाड़ी चला रहा था। सोमा को देखकर अक्षय उतरकर सोमा के पास आया।

कुमार महेशचरण की गाड़ी को अच्छी तरह जानता था। सिविल लाइन्स में वह खूब मशहूर थी। उस गाड़ी पर से सोमा को उतारकर कुमार ने बहुत आग्रहपूर्वक अपनी गाड़ी में बिठा लिया और बोला :

कुमार : "यहाँ इस गाड़ी में कैसे ? किधर से आ रही हो ?"

सोमा : "जिधर गई थी उधर से आ रही हूँ, तुम्हें इससे क्या ?"

कुमार ने डरते-डरते कहा :

"कभी मुलाकात भी नहीं होती ? ऐसी बेरुखी क्यों ?"

"फुरसत ही नहीं मिलती।" सोमा ने स्थिर स्वर में उत्तर दिया।

नया बाजार के शुरू में ही मिठाई वाले पुल के पास सोमा ने गाड़ी खड़ी करवा ली। बोली : "मुझे यहीं उतार दो।"

"क्यों ?"

"पास ही घर है, पहुँच जाऊँगी।"

सोमा कुमार को घर तक नहीं ले जाना चाहती थी, इसलिये वहीं उतरने की कोशिश में थी।

"नहीं, मैं पहुँचा दूंगा, बैठो।" कहकर कुमार ने उसे गाड़ी में बिठा लिया और गाड़ी आगे चला दी।

घर पर उस समय कोई नहीं था। अमर कालेज गया हुआ था। कुमार सोमा के साथ ऊपर आ गया।

विवाह के बाद कुमार की सोमा से यह पहली ही भेंट थी। इस बीच कुमार अब भी वही था, मगर सोमा बदल गई थी। उसपर एक नये पुरुष की छाया पड़ चुकी थी। लेकिन वह कुछ भी हो चुकी हो,

कुमार के लिये तो अब भी वह वही सोमा थी, जो उसके साथ दस बरस तक हँसी-खेली थी।

सोमा को देखकर उसका बचपन फिर जाग उठा। उसने कोने में पड़ी सितार को देखकर कहा : "सोमा, सितार पर एक गाना सुना दो।"

सोमा : "सितार सुनाने की अब फुरसत नहीं।"

कुमार : "दो मिनट ही सही।"

सोमा : "सितार टूटा हुआ है।"

कुमार ने ध्यान से देखा, सितार बिल्कुल ठीक था।

बोला : "टूटा तो कहीं से नहीं।"

सोमा का कोई बहाना कामयाब नहीं हुआ तो बोली : "अब किसी ऊँचे घरवाली से सुनना।"

कुमार इस व्यंग्य को समझ गया और चुप हो गया। सोमा को अवसर मिला तो कहा : "कौन-सी महारानी आने वाली हैं, निमंत्रण देना तो न भूल जाओगे ?"

कुमार ने लम्बी साँस लेकर अर्थ-भरे स्वर में कहा : "निमंत्रण का मौका ही न आयेगा।"

कुमार के स्वर में कुछ ऐसी निराशा थी कि सोमा भी द्रवित हो गयी और बोली : "अब तुम जाओ, बाबू जी को पता लगा तो सख्त नाराज होंगे।"

कुमार : "नहीं, अब वे नाराज न होंगे।"

सोमा इसका अर्थ समझकर बोली : "हाँ, अब तो जो होना था हो चुका, तुम्हारे लिये अब उन्हें कोई चिन्ता नहीं। अब वे निश्चिन्त हो गये। क्यों ?"

कुमार ने कोई उत्तर न दिया। थोड़ी देर दोनों चुप रहे।

सोमा ने ही मौन भंग किया : "अब तुम इधर न आना।"

कुमार कुर्सी पर बैठते हुए बोला : "क्यों, ऐसा जुल्म क्यों ?"

सोमा ने कुमार की ओर पीठ किए हुए कहा : "मैं वे बातें भूल जाना चाहती हूँ ।"

कुमार के मन में सोमा को देखकर नया स्नेह उमड़ आया था । उसने कहा : "भुलाने से तो कोई कुछ नहीं भूलता और भुलाती भी क्यों हो, मैं तो भुलाने की कोशिश नहीं करता—कभी-कभी मिलती रहोगी तो दिन अच्छे बीत जायेंगे ।"

सोमा ने फिर उसी स्वर से उत्तर दिया : "भेंट होना आवश्यक नहीं ।"

निराशा में डूबे कुमार ने पूछा : "तो क्या कभी न आऊँ ?"

"इसीमें कल्याण है ।" कहकर सोमा दरवाज़े से बाहर हो गयी ।

कुमार विदा होने लगा तो सोमा को याद आया । उसने घर आये अतिथि को पानी भी न पूछा था । सोमा अब गृह-स्वामिनी थी, पानी पूछना उसका गृह-धर्म था । दरवाजा खोलकर पुकारने को वह आगे बढ़ी, लकिन तब तक कुमार विदा हो चुका था । उसकी गाड़ी नया बाजार की सड़क पर जमा हुए ठेलों को हार्न दे रही थी । हार्न के कर्कश स्वर में सोमा कुमार के हताश हृदय का चीत्कार भी सुन रही थी । वह अन्दर आकर लेट गयी ।

उसी समय अमर ने दरवाजा खटखटाया और आकर रोज की तरह पूछा : "चाय तैयार है ?"

सोमा ने चाय तैयार करने का समय कुमार से बातें करने में बिता दिया था, मगर बोली : "भारती-भवन से अभी आयी हूँ, देर हो गयी, अभी तैयार हो जाती है ।"

कुमार के आने का जिक्र तक न हुआ । केवल यही बात हुई कि कल वह महेशचरण की कोठी पर जायेगी ।

◇ ◇ ◇

सोमा ने सोने से पहले कई बार सोचा कि अमर से कुमार के घर आने की बात कह दे—लेकिन बार-बार अन्दर की कोई प्रेरणा उसे पिछली स्मृतियों को अनावृत्त करने से रोकती रही।

सोमा ने महेशचरण के बँगले की पूरी आपबीती सुना दी। अमर ने सोमा को वहाँ अकेले जाने से रोका—लेकिन सोमा न मानी। अमर भी सोमा के साथ जाता—लेकिन उस दिन अमर ने कालेज से छुट्टी नहीं ली थी।

अमर और सोमा अभी इन्हीं उलझनों को सुलझा रहे थे कि महेशचरण की मोटर सोमा को लेने आ गयी। बँगले पर पहुँचे तो महेशचरण के साथ आज एक और भारी बेडौल-सा आदमी भी बैठा था।

महेशचरण जी ने उनका परिचय कराया : "आप हैं लाला झरोखेलाल डिस्ट्रीब्यूटर, दिल्ली के रईस और मेरे अभिन्न मित्र।"

दोनों अन्दर कमरे में चले गये। महेशचरण ने लौटकर पूछा : "सोमा जी, आपसे एक बात पूछूँ तो बुरा तो न मानेंगी? झरोखेलाल यदि आपके उपन्यास का फिल्म बनवायें तो क्या आप उसमें काम करना पसन्द करेंगी?"

सोमा इस प्रश्न के उत्तर के लिये बिल्कुल तैयार होकर नहीं गयी थी। बोली : "यह अजीब-सा सवाल कर दिया है आपने।"

महेशचरण जी ने कहा : "झरोखेलाल जी कहते हैं कि हम फिल्म तभी बनायेंगे जब उसमें आप काम करेंगी।"

सोमा ने साहस बटोरा और पूछा : "मेरे फिल्म में काम करने का मेहनताना क्या होगा?"

झरोखेलाल जी बोले : "आप स्वयं कह दें, हम स्वीकार कर लेंगे।"

"हजार रुपया महीना" सोमा ने सहमे-से स्वर में कह दिया।

"मंजूर है, मंजूर है सोमा जी, हमें मंजूर है।" झरोखेलाल जी कुर्सी से उछलतें हुए बोल उठे।

सोमा : "एक बात और···"

झरोखेलाल : "कहिये।"

सोमा : "मेरे पति मेरे साथ रहेंगे।"

झरोखेलाल : "जी, अवश्य रहें, हमने कहानी खरीद ली है। आपके साथ वे रहें, हमें क्या आपत्ति।"

सोमा : "नहीं, मगर संवाद-लेखन भी वही करेंगे।"

झरोखेलाल : "आप कहती हैं तो इसकी भी कोशिश करेंगे। और ये बातें तो तय होती ही रहेंगी। इतने अच्छे लेखक का हमको सहयोग मिल जायगा यह भी सौभाग्य की बात होगी। आप कल उनसे बात करके अपना निश्चय अवश्य बतलाइये। मैं आपका इन्तजार करूँगा।"

सोमा ने स्वीकृति-सूचक संकेत कर दिया।

झरोखेलाल : "तो, कल गाड़ी भेजूंगा।"

"आप की इच्छा" कहकर सोमा ने महेशचरण की गाड़ी में कदम रखा।

घर पहुँचने पर उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं थी।

आज पांच कदमों में ही दस सीढ़ियाँ पार कर लीं सोमा ने। उसके कण्ठ में गीतों के स्वर गूंज रहे थे। उसका मन नाचने को कर रहा था

शाम को चाय के समय अमर ने स्वयं पूछा : "महेशचरण जी से क्या बातें हुईं ?"

सोमा ने पूरी बात विस्तार से बता दी। अमर पूरे समय केवल 'हूँ'···'हूँ' करके बात सुनता रहा।

सोमा : "इस 'हूँ' का क्या अर्थ है।"

अमर : "इसका कुछ भी अर्थ नहीं।"

सोमा : "तो स्पष्ट बतलाओ, तुम्हारी स्वीकृति है या नहीं ।"

अमर : "काम तुम्हें करना है, स्वीकृति मैं दूं ?"

सोमा : "राय तो दे सकते हो ।"

अमर : 'पहले तुम बतलाओ ।"

सोमा : "नहीं, पहले तुम ।"

अमर : "अच्छा, मैं ही कहता हूँ, मेरी राय में तो ऐसे संयोग दैवकृपा से ही मिलते हैं ।"

इस उत्तर में सोमा को अमर की स्वीकृति मिल गयी थी । किन्तु वह इसकी और भी पुष्टि चाहती थी । उसने कहा :

"सब पहलुओं से सोच लिया आपने ?"

"ऐसा शतावधानी होने का दावा तो मैं नहीं कर सकता । फिर भी सोच ही लिया है ।" अमर ने सादगी से जवाब दिया ।

"मुझे फिल्म में काम करना होगा !" सोमा ने प्रश्न के सबसे मार्मिक पहलू को छूकर अमर की ओर संदिग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा ।

"मनुष्य की परख उसके काम से नहीं, बल्कि काम करने के ढंग से होती है ।" अमर ने संक्षेप में उत्तर देकर इस कल्पित भय का निवारण करने की कोशिश की ।

"साधारण रूप से संस्कारी लड़कियाँ इस काम को करना पसन्द नहीं करतीं" सोमा ने फिर अमर को टटोला ।

"मगर तुम तो असाधारण हो" अमर ने सोमा को इस उत्तर से बिल्कुल परास्त कर दिया ।

सोमा ने बात का रुख पल्टा । अपनी बात छोड़ वह अमर की बात पर आयी । "असुविधा अवश्य होगी आपको ।"

"कैसी असुविधा ?"

सोमा : "यही कि समय पर चाय नहीं मिलेगी, खाने में देरी होगी और कभी-कभी······"

"अपनी ही सुविधाओं का ध्यान रखना इन्सानियत नहीं।" अमर ने फिर अपनी सहज उदात्त प्रकृति के अनुकूल उत्तर दे दिया।

थोड़ी देर चुप्पी रही। फिर अमर ने स्वयं बात चलायी।

अमर : "लेकिन, तुम्हें संसारी संघर्षों में डालना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

सोमा : "संघर्षों से मुझे खुद लगाव है। संघर्ष-रहित जीवन में भी कोई रस है क्या ?"

सोमा ने यह बात कहते हुए अपनी पूरी सहमति प्रकट कर दी थी, लेकिन जैसे किसी भूली बात की याद आयी हो कुछ ऐसे वह बोली :

"मैं भी अपनी ही बात कहे जा रही हूँ। आपकी बावत तो सोचा ही नहीं। आप अपने कॉलेज का काम कैसे छोड़ देंगे ?"

"श्रेष्ठतर के लिये श्रेष्ठ को छोड़ना ही नीतिमत्ता है" अमर का उत्तर था।

सोमा ने अपने ही मन के कुछ सन्देहों का स्वयं उत्तर देते हुए कहा : "उपन्यास तो आपका ही लिखा होगा, स्रष्टा तो आप ही होंगे, मैं तो मामूली अभिनेत्री ही बनूंगी।"

अमर इन तुलनाओं में भाग नहीं लेना चाहता था, बोला :

"स्रष्टा कोई हो, सृजन होना चाहिये, मुझे कॉलेज के कार्य में बहुत रुचि भी नहीं। इसमें सृजन-कार्य तो होता ही नहीं। तभी चित्रकला से दिल बहला लेता हूँ।"

सोमा : "तो कल महेश जी को हाँ कर दूं ?"

अमर ने सोमा को गले लगाते हुए कहा : "कर दो सोमा। इसमें भी कोई दैवीय प्रयोजन ही होगा।"

◇ ◇ ◇

दूसरे दिन सुबह फिर महेशचरण जी की कार आयी। सोमा के साथ आज अमर भी जाने को तैयार हुआ। तीनों चल पड़े। कार में ही जाते-जाते अमर ने सुझाया : "अपने माता-पिता की भी राय ले लो, कहो तो बेला रोड के बँगले पर होते चलें ?"

"मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु सब आप ही हैं अब ! मुझे किसीसे नहीं पूछना।" सोमा ने निश्चित स्वर में कहा।

सोमा जानती थी कि वह बँगला नीलकंठ जी के प्रभाव में कभी निष्पक्ष सम्मति नहीं देगा। नीलकंठ जी उसके मार्ग में बाधाओं का जाल बिछा देंगे। इसलिये उनसे दूर रहकर स्वनिर्धारित मार्ग पर चलने में ही उसने कल्याण माना।

"वे असहमत हुए तो···" अमर ने संदिग्ध भाव से प्रश्न कर लिया।

"असहमत होने का अधिकार सबको है लेकिन···अपना भला-बुरा इन्सान स्वयं ही सोच सकता है।" सोमा ने फिर दृढ़ता दिखलायी।

"उनसे बिना पूछे चले गये तो वे बुरा मानेंगे।" अमर ने कहा।

सोमा : "वे माँ-बाप ही क्या जो बुरा मान जायें—हाँ, मगर तुम्हें पूछना हो तो अपने माता-पिता से पूछ लो।"

अमर ने उत्तर दिया : "जब हम उनसे जुदा रहने चले आये तो उन्हें अपनी उलझनों में घसीटना उनके साथ अन्याय है। अपनी चिन्ताओं का भार अब हमें अपने ही कन्धों पर उठाना होगा।"

इन्हीं बातों में कार महेशचरण की कोठी के दरवाजे पर पहुँच गयी।

बैठक में पहुँचकर सोमा ने अमरेश बाबू का परिचय कराया।

महेशचरण ने सोमा से पूछा : "कहिये क्या निश्चय किया आपने ?"

सोमा ने अमरेश की ओर इशारा करते हुए कहा : "इन्होंने भी जाना स्वीकार कर लिया है।"

महेशचरण जी बीच में बोले : "मगर आप तो कालेज में पढ़ाते हैं, आपके लिये तो शहर छोड़कर जाना बहुत कठिन होगा।"

झरोखेलाल जी ने भी इसका समर्थन किया। स्पष्ट ही था कि ये दोनों सोमा के संग उसके पतिदेव का जाना पसन्द नहीं कर रहे थे।

सोमा ने समाधान कर दिया : "हाँ, मगर आप तीन महीने की छुट्टी ले लेंगे और फिल्म बनने तक मेरे ही साथ रहेंगे।"

झरोखेलाल जी ओठ चबा रहे थे। उन्हें सोमा के साथ अमर का जाना बिल्कुल सह्य नहीं था। वे कुछ बोलने ही वाले थे कि महेशचरण जी ने इशारे से उन्हें चुप कर दिया।

बात तय हो चुकी थी। महेशचरण जी ने उठकर सोमा का धन्यवाद किया और कहा :

"आप एक सप्ताह के अन्दर ही बम्बई पहुँच जायें। झरोखेलाल जी तो कल ही एक दूसरी फिल्म का सौदा करने बम्बई जा रहे हैं। दादर के प्रभाकर स्टुडियों में आप इनसे मिल लीजियेगा। आप से एक हज़ार रुपये प्रतिमास के हिसाब से छः महीने का कन्ट्राक्ट कर लिया जायेगा। शेष बातें वहीं विस्तार से झरोखेलाल तय कर लेंगे।"

विदा देते हुए झरोखेलाल जी ने पाँच सौ रुपये का चैक सोमा जी की हथेली पर रख दिया। और उसी समय फोटोग्राफर को बुलाकर सोमा की एक फोटो भी खींच ली।

"आप अब फिल्मी दुनिया की मशहूर तारिका बन जायेंगी सोमा जी।" झरोखेलाल जी ने अपनी नोकदार लम्बी मूछों को ऐंठते हुए कहा।

सोमा को झरोखेलाल की नोकदार लम्बी मूछों, उनकी गड्ढे में धँसी पैनी आँखों और उसपर छायी हुई घनी-उलझी भौंहों, सबसे नफरत थी। लेकिन पाँच सौ रुपये भी तो उन्होंने दिये थे और भविष्य में उन्हीं पैनी आँखों के सामने सोमा को काम करना था। इन विचारों से सोमा एक बार तो फिर सहमी, सकुचायी, डरी और काँपी लेकिन फिर उसकी तेजस्विता ने ललकारा। पीछे हटना उसके कदमों ने सीखा ही न था।

चार दिन तैयारी में गुजर गये। अपने सब सामान को अमर ने अपने माता-पिता की धरोहर रख दिया। कालेज से छुट्टी ले ली और दोनों ने केवल परस्पर प्रेम, विश्वास का पाथेय लेकर अपनी नाव को जीवन की उस नयी धारा में छोड़ दिया, जिसके कूल-किनारे का उन्हें ज्ञान ही न था।

◇ ◇ ◇

उसके बाद वे कब दिल्ली को छोड़ बम्बई पहुँच गये उन्हें कुछ पता नहीं लगा। वह एक सप्ताह एक दिन के समान बीत गया।

बम्बई के सेन्ट्रल स्टेशन पर उतरकर अभी होटल में सामान उतारा ही था कि एक विशाल मोटर दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। ड्राइवर ऊपर आया। उसके पास झरोखेलाल जी का कार्ड था। अमर और सोमा उसके साथ नीचे उतरे।

मोटर समुद्र-तट को छूती हुई चल पड़ी। अमर देख रहा था, यहाँ पृथ्वी का आंचल समुद्र को छू रहा था। समुद्र की उत्ताल तरंगें सड़क को भुजाओं में समेटने का यत्न कर रही थीं। अमर का अन्तःकरण एक ओर समुद्र का जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक फैला हुआ

विस्तार देख रहा था और दूसरी ओर आकाश को छूने वाले मकानों की ऊँचाई नाप रहा था ।

दादर पहुँच एक बँगले के बड़े आँगन में मोटर ने प्रवेश किया । गेट के अन्दर प्रवेश करते ही अमर और सोमा ने देखा, विचित्र वेश-भूषा पहने कुछ व्यक्ति दायें-बांयें खड़े हैं । उनके चेहरे लाल रंग से पुते हुए हैं । हाथों में किसीके बरछी है, किसीके भाला । कमर पर किसीने मृगछाल लपेट रखी है, किसीने व्याघ्र छाल । थोड़ी दूर पर लाल चोली, काले लहँगे और गले में पीतल के बड़े-बड़े जेवर लादे चार लड़कियाँ खड़ी हैं । यह एक स्टूडियो था, जहाँ झरोखेलाल का फ़िल्म 'रूपकुमारी' बन रहा था ।

सोमा को झरोखेलाल के साथ प्रवेश करते देख सबकी आँखें उधर मुड़ीं । आँखों-आँखों में इशारे होने लगे । किसी-किसीने लम्बी आह भरी और कुछ कहा जो पूरी तरह सुनायी नहीं दिया ।

सोमा इतनी आँखों के अकस्मात् लक्ष्य बनने की अभ्यस्त नहीं थी । उसकी झेंप मिटाने के लिये अमर ने उसे बातों में लगा लिया ।

आफिस में पहुँचकर झरोखेलाल ने चपरासी से पूछा :

"चैटर्जी कहाँ है ।"

"नम्बर दो में ।"

"किस चित्र का शूटिंग हो रहा है ?"

"रूपकुमारी का ।"

ओवर हो जाय तो कह देना इधर आ जायें ।

थोड़ी देर में चैटर्जी आ गये । झरोखेलाल ने परिचय कराते हुए कहा : "यह हमारी नयी हीरोइन हैं···और आप हैं डायरेक्टर चैटर्जी, इनसे मिलिये ।"

चैटर्जी ने शिष्टाचार की अधिक परवाह न कर सोमा के चारों ओर परिक्रमा की । ऊपर-नीचे, दायें-बायें अच्छी तरह देखा । और बोला :

"बहुत सुन्दर, बहुत सुन्दर, आइडियल, आइडियल।"

झरोखेलाल ने सुझाया : "इनकी तस्वीर निकालकर कैमरा टेस्ट भी ले लो।"

चैटर्जी बोले : "नहीं ये तो खुद तस्वीर हैं, हर एंगल से इनका चेहरा ठीक है।"

आफिस में ये बातें हो ही रही थीं कि दूर पर खड़ी लड़कियों में से एक लड़की भागती-भागती वहाँ आयी। उसके पीछे बरछी लिये और व्याघ्र-छल पहने एक दैत्याकाय आदमी भी था।

हाथ पटक-पटककर पीछे आते आदमी की ओर इशारा करके आते ही उसने कहना शुरू किया : "हम इसके साथ पार्ट नहीं करेंगी। यह मवाली है।"

चैटर्जी उनका झगड़ा सुलझाने लगे।

सोमा और अमर इस विचित्र लीला को देखकर बड़े डर-से गये थे। उनकी परेशानी दूर करने के लिये झरोखेलाल जी ने सोमा से कहा : "आप डरिये नहीं, यह हमारी कम्पनी का आदमी नहीं है। एक 'हिमालयन फिल्म कंपनी' अपनी स्टंट पिक्चर्स बना रही है। उसमें सारे लोफर भरे हैं।"

चैटर्जी के असिस्टेन्ट मिस्टर केटकर ने दाद दी :

"जी हाँ, अपनी कम्पनी में तो सब बी० ए०, एम० ए० एक्टर हैं, एक भी लोफर नहीं।"

इतने में चैटर्जी भी आ गये थे। बातचीत फिर शुरू हुई :

चैटर्जी : "आपका नाम ?"

"सोमा जी।"

"मिसेज···अमर" सोमा ने कहा।

"ओ, तो आप विवाहित हैं ?"

"जी, आपको आश्चर्य क्यों होता है।"

"दिखने में तो आप मुश्किल से १५ वर्ष की दिखती हैं ?"

सोमा के गालों की सुर्खी जरा ज्यादा गहरी हो गयी थी।

झरोखेलाल ने कहा :

"आपका नाम मिस सोमा ही रहे तो अच्छा है।" सोमा ने अमर की ओर देखा।

"नाम जो चाहें रख लें। नाम में क्या है ?" अमर ने समाधान कर दिया।

झरोखेलाल : "और आप हैं मिस सोमा के पतिदेव अमरेश जी··· मिस्टर अमरेश, माफ करना मैं मिस्टर लगाना भूल गया था।"

"आप भी क्या इनके साथ रहेंगे ?" चैटर्जी ने ऐसे पूछा मानो उनका साथ रहना बहुत आपत्तिजनक था।

"साथ ही नहीं रहेंगे, काम भी करेंगे" झरोखेलाल जी ने धीमे से कहा।

चैटर्जी ने सिगरेट का जलता टुकड़ा ऐशट्रे में जोर से घुमाकर बुझाते हुए पूछा : "कौन-सा काम करेंगे ?"

"आप कहानी लिखते हैं, संवाद लिखते ह, गीतकार हैं और आप ही बतलाइये अमरेश जी।"

"खैर यह तो आपका सिर दर्द है। आप जानें आपका काम जाने, बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर अमरेश जी···मैं भूल गया मिस्टर अमरेश जी।" कहते हुए चैटर्जी ने अमर से हाथ मिलाया।

झरोखे जी ने केटकर को बुलाकर कहा : "इनकी कन्ट्राक्ट तैयार करवा दो।"

◇ ◇ ◇

दूसरे दिन जब सोमा और अमर प्रभाकर स्टूडियो पहुँचे तो कम्पनी के सहायक डायरेक्टर केटकर ने सोमा का कन्ट्राक्ट टाइप करवा दिया। झरोखेलाल जी ने भी देखा और सोमा को दे दिया।

कन्ट्राक्ट सोमा के नाम एक चित्र में काम करने का था। शर्त यह थी कि सोमा छः महीने काम करेगी और १० हजार रुपया लेगी।

सोमा ने अमर की ओर इशारा करते हुए झरोखेलाल जी से पूछा : "और इनका कन्ट्राक्ट ?"

झरोखेलाल ने दस हज़ार की जगह बारह हज़ार लिखते हुए कन्ट्राक्ट पर दस्तखत कर दिये और कहा : "इनका कन्ट्राक्ट भी हो जायगा कुछ दिन बाद। मैंने आपकी रकम बढ़ा दी है। अब तो संतुष्ट हैं आप, मैं सबको आशा से अधिक देता हूँ, काम करने वाले खुश रहें यही मेरा मोटो है।"

पहले दिन इतना ही काम हुआ। मोटर दोनों को होटल में छोड़ गयी।

दूसरे दिन केटकर ने कहानी का प्लाट सोमा को सुनाने के बाद कहा : "घुड़सवारी भी सीखनी होगी, नृत्य का भी अधिक अभ्यास करना होगा।"

सोमा का अगले दिन से ही घुड़सवारी का अभ्यास शुरू हो गया। यह अभ्यास जुहू पर होता। वहाँ पहुँचकर सोमा घोड़े से जूझती और अमर मीलों तक फैले रेतीले मैदान पर अकेला कविता करता।

कुछ दिन इसी तरह निकल गये।

चार-पाँच दिन बाद सोमा ने डायरेक्टर चैटर्जी को याद दिलाया। "आपने अमर के गीत और उनकी कहानी के सम्बन्ध में क्या निश्चित किया ?"

चैटर्जी ने मानो भूली हुई बात को याद करते हुए कहा :

'आपके पति बहुत अच्छे लेखक हैं, लेकिन कहानी का फिल्मीकरण दूसरी ही कला है। कुछ दिन उन्हें अभ्यास करना होगा। मेरे सहायक उन्हें इस काम में मदद करेंगे।"

सोमा : "यह सब तो हो जायगा लेकिन उनके साथ भी कन्ट्राक्ट तो हो ही जाना चाहिये।"

चैटर्जी : "कहानी का कन्ट्राक्ट तो संवाद और गीत बनाने के बाद ही होगा। वैसे आपके कन्ट्राक्ट में हमने उनकी रकम भी शामिल कर ही दी है। और अब आपको जल्दी भी क्या है ? खर्च तो चलता ही है। आपकी आय उनकी आय है। आपके साथ वे यहाँ आयेंगे ही। मैं अपने सहायक से कह दूंगा, उनके साथ बैठकर यह काम जल्दी ही पूरा कर लेगा।"

अमर ने इस बात को सुना तो वह समझ गया कि कंपनी को उसकी कहानी नहीं, सोमा चाहिये। अभी तक उसका भ्रम था कि उसके उपन्यास ने ही महेशचरण को मुग्ध कर लिया था। अब सचाई साफ हो गयी थी। उसका दिल बुझ गया।

लेकिन जब वह सोमा का उत्कर्ष देखता और उसे प्रसन्न देखता तो अपनी उदासी भूल जाता। अपने को सोमा में लय करके ही वह संतोष करता रहा। सोमा के साथ ही वह स्टूडियो जाता था। सोमा अपने काम में व्यस्त हो जाती थी। वह अकेला बैठा रहता। कोई उससे बात करने वाला भी न होता। चैटर्जी तो अब उसे पहचानते ही न थे, केटकर और दूसरे कारिन्दे भी अनदेखा कर देते थे। कभी-कभी बैठने की कुर्सी भी नहीं मिलती थी। अमर जब चैटर्जी को कहानी की याद दिलाता तो वह कह देता, "आज तो दूसरा काम है, आप कल आइयेगा। आपकी कहानी में बहुत घट-बढ़ करनी है। म्यूजिक डाइरेक्टर जोशी कहता था : देखिये, फिल्मी गीतों की तर्जें कुछ और ही होती हैं। इन्हें कुछ ऐसे लहजे में लिखिये कि मामूली लोग भी इसे पकड़ सकें। अभ्यास

से सब हो जायेगा। इसमें कुछ देर और लगेगी।"

दो महीने यही क्रम चलता रहा। अमर जल्दी स्टूडियो से वापस आ जाता। सोमा जरा देर में आती थी। आकर वह पूछती : "आप जल्दी क्यों आ गये ? आपको क्या वहाँ अच्छा नहीं लगता ?" अमर का मन तो होता कि वह सच्ची बात कह डाले कि वहाँ उसका अपमान होता है। उसकी परवाह नहीं की जाती। लेकिन वह इतना ही कहता : "आज विशेष काम नहीं था, सोचा, घर चलकर आराम करूँगा।"

एक दिन जब अमर जल्दी आ गया तो सोमा ने पूछा : "आप जल्दी क्यों आ गये ?"

अमर : "कुछ काम नहीं था। आ गया।"

सोमा : "कहानी के संवाद भी तो लिखने हैं आपको।"

अमर : "नहीं अब शायद इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी।"

सोमा रुआँसी होकर कहती : "मैं आपको ढूंढ़ती रही ?"

अमर : "सच ?"

सोमा : "आप पूछते हैं, सच ? चलो, हम नहीं बताते।" कहकर सोमा रूठी-सी सोफे पर बैठ गई।

अमर उठा, सोमा का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला : "मैं जानता हूँ सोमा, खूब जानता हूँ।"

"क्या जानते हो ?"

"कि तुम मुझे क्यों ढूंढ़ती थीं ?"

"बतलाओ ?"

"ढूंढ़ तुम रही थीं, बतलाऊँ मैं ?"

"तो, न बतलाओ। किसीकी मजबूरी पर तुम्हें मजाक सूझता है। जब मैंने गीत गाया सब लोग वाह-वाह कर उठे। मैंने चारों ओर नजर दौड़ाई, तुम न थे। मुझे उस वाह-वाही में कोई रस न आया। बाहर निकलकर तुम्हें पूछा। लाला ने बतलाया तुम चले आये। पहले तुम

मेरे साथ गाड़ी में लौटते थे, आज कैसे आये ?"

"कैसे आया ? बड़ी आसानी से आ गया। कुछ भी कठिनाई न हुई। थोड़ी दूर पर ही बस का अड्डा है। हाथ दिया और वह खड़ी हो गयी। ठाठ से बैठकर यहाँ आ गया। लगे भी केवल दो आने। दो आने की बादशाहत बड़ी अच्छी है यह। मोटर की गुलामी कौन करे ?"

"और कौन ? हमें ही करनी होगी अकेले। मैं भी कल से बस में आया करूँगी। आप बस में आयें और मैं मोटर में, यह अच्छा नहीं लगता।"

"मगर, यह बात कैसे निभेगी सोमा। तुम्हें देर-अबेर आना-जाना होता है। कब तक राह देखूँगा तुम्हारी, मुझसे यह न होगा।"

"इतनी भी इन्तजार नहीं कर सकते। मुझे कहो, मैं तो सारा दिन तुम्हारी इन्तजार में खड़ी रह सकती हूँ।"

"सच, सोमा।"

"हाँ सच, वचन देते हो।"

"तो अब मैं तुम्हारा इन्तज़ार कर लिया करूँगा, वचन देता हूँ।"

"तो हाथ मिलाओ", कहकर सोमा ने हाथ बढ़ाया।

अमर ने हाथ में हाथ ले सोमा को छाती से लगा लिया। इस दरस-परस से सोमा का रोम-रोम रस से भीग गया। सजल नेत्रों से उसने कहा : "तुम अगर इसी तरह मुझे छोड़ जाया करोगे तो मैं सब काम-काज छोड़कर भाग आऊँगी। मुझसे इतने लोगों के बीच इतनी देर अकेले नहीं रहा जाता।"

"क्यों, डर लगता है उनसे ?"

"डरूँगी तो क्या मैं, लेकिन इतने लोगों के बीच अकेली भटकी-सी अनुभव करती हूँ। ऐसी, जैसे किनारा न मिल रहा हो।"

"अच्छी बात है, मैं तुम्हारे साथ रहूँगा ?" अमर ने आश्वासन दिया ।

◇ ◇ ◇

कहने को तो कह दिया अमर ने कि मैं तुम्हारा साथ पूरा निभाऊँगा लेकिन निभना कठिन हो गया ।

साक्षी मात्र रहकर वह कैसे दिन काटता ? सोमा प्रतिक्षण व्यस्त रहती । सुबह वह घोड़े की सवारी सीखती । अमर को घुड़सवारी का शौक न था । वह लहरें गिनता तट पर बैठा रहता ।

सोमा कहती : "तुम भी घुड़सवारी सीख लो ।"

"मेरे किस काम आयेगी ?" अमर कहता : "पशु की पीठ पर बैठना मुझे यों भी पसन्द नहीं ।"

सोमा कहती : "मुझे तो बड़ा अच्छा लगता है ।"

"तो तुम बैठो, जो अच्छा लगता है करो ।"

घुड़सवारी से थकी-टूटी सोमा घर पहुँचती । नौकर चाय के साथ जले-भुने टोस्ट दे देता, और कम्पनी की गाड़ी आ जाती । यही सोमा की प्रातःकालीन दिन-चर्या थी ।

एक दिन सोमा के आग्रह पर अमर भी कम्पनी की गाड़ी में ड्राइवर की साथ वाली सीट पर बैठ गया । ड्राइवर ने कहा : "गाड़ी में तो जगह न होगी। परेल से नीमाबाई को भी लेना है।" और गाड़ी की पिछली सीट पर बैठे असिस्टेन्ट डायरेक्टर केटकर ने वही बात दोहराई ।

"लेकिन उसे दूसरी गाड़ी भेज देंगे" कहकर सोमा ने अमर को बैठे रहने का इशारा किया ।

तब केटकर ने फिर कहा : "नीमाबाई का तो मेकअप है। उसे ६ बजे सेट पर पहुँचना है। उसे तो इसी गाड़ी में ले जाना पड़ेगा ।"

सोमा ने बात अनसुनी कर दी। लेकिन ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट नहीं की। वह अमर के उतरने की प्रतीक्षा में था। अमर अभी सोच ही रहा था कि वह उतरे या न उतरे कि ड्राइवर ने उठकर अमर के पास वाला दरवाजा खोल दिया और कहा : "माफ कीजियेगा, गाड़ी में जगह नहीं है ।"

अमर उतर गया।

सोमा भी उतरने लगी। मगर केटकर ने बाँह पकड़कर थाम लिया, "नहीं आपका भी मेकअप है, आपको तो चलना ही होगा ।"

सोमा न उतर सकी। ड्राइवर ने दरवाजा बन्द कर दिया।

अमर फुटपाथ पर खड़ा था।(गाड़ी अमर की रही-सही इज्जत को खुरदरे पहियों से रौंदती हुई आगे बढ़ गयी।)

अमर होटल के कमरे में लौट आया। अपमान का यह विष बहुत कड़वा था। कुछ देर तो उसे कुछ न सूझा कि वह इस गहरे घाव को कैसे भरे।

सामने मेज पर रंग की ट्यूब पड़ी थी। उसने फ्रेम में केन्वस चढ़ाया और रंग भरकर चित्र बनाने में मन लगाने की कोशिश करने लगा।

उसी समय होटल के छोकरे ने पुकारा : "आपका टेलीफोन है ।"

सोमा टेलीफोन पर बोल रही थी। "मैं दूसरी गाड़ी कम्पनी की आपके पास भेज रही हूँ, आप अभी आ जाइये ।"

अमर ने अपने उबलते क्रोध को संयत करते हुए कहा : "नहीं इसकी कोई जरूरत नहीं। तुम तो जानती हो मैं जाना ही नहीं चाहता था ।"

फिर भी सोमा ने गाड़ी भेज दी। ड्राइवर ने भी अमर से चलने का आग्रह किया लेकिन अमर एक न माना। उसने कहा : "मुझे बहुत ज़रूरी काम है, मैं नहीं आ सकूँगा।"

गाड़ी जब अमर को लिये बिना खाली पहुँची तो सोमा को मर्मान्तक पीड़ा हुई।

अपने मेकअप-रूम को बन्द कर वह चिन्ताग्रस्त बैठ गयी।

थोड़ी देर में केटकर ने दरवाज़ा खटखटा कर कहा : "सेटिंग तैयार है, चैटर्जी बुलाते हैं।"

सोमा ने दरवाजा खोले बिना कह दिया : "मेरी तबियत ठीक नहीं।"

चैटर्जी खुद आये, समझाया : "यह सेटिंग केवल आज के लिए किराये पर लिया है। आज शूटिंग न होगा तो कम्पनी को ५००० रु० का घाटा हो जायेगा।"

भारी दिल से सोमा सेट पर गयी। मगर मूड नहीं बना। एक-एक सीन को तीन-तीन बार लेना पड़ा।

किसी तरह काम निबटाकर वह वापस पहुँची तो देखा, अमर चित्र बनाने में मस्त था।

सोमा के पहुँचने पर भी उसने सोमा की ओर मुख नहीं मोड़ा, निगाह नीची किये चित्र बनाता रहा।

सोमा ने शीशे के सामने खड़े-खड़े मेकअप उतारते हुए कहा :

"आपने चाय तो ली ?"

"नहीं, मुझे भूख नहीं" अमर ने आँख ऊपर उठाये बिना जवाब दे दिया।

"मुझे तो है" कहकर सोमा ने छोकरे को चाय लाने के लिये कहा।

अमर : "तो तुम पी लो।"

"एक कप आप भी पी लीजिये।" सोमा ने मिन्नत करते हुए कहा : "साथ देने को ही पी लीजिये।"

अमर ने व्यंग किया : "तुम्हारा साथ देने को ही तो मैं मोटर पर चढ़ा था।"

सोमा : "ड्राइवर बड़ा बदतमीज था, मैं उसे बर्खास्त करवा दूँगी।"

"मैं मालिक होता तो उसे इनाम देता" अमर ने चित्र पर लम्बी कूची घुमाते हुए जवाब दिया।

छोकरा दो कप चाय ले आया था।

"यह चाय भी अजीब है—रंग इतना गहरा और खुशबू नाम को नहीं" सोमा ने चाय की शिकायत की।

अमर ने चाय की प्याली में और शक्कर डालते हुए कहना तो यह चाहा : "तुम्हारी फिल्मी दुनिया भी ऐसी ही है," मगर सोमा को कुछ न कहकर छोकरे से कहा : "इसमें गेरू रंग ज्यादा क्यों डाल लाया है ?"

'सोमा ने भी दो घूँट पीकर चाय छोड़ दी, बोली :

"अब अपना मकान ले लेना चाहिये, होटलों की चाय कब तक चलेगी ?"

"जब तक तुम्हारा कन्ट्राक्ट चलेगा तब तक" अमर ने चाय की प्याली खाली करते हुए जवाब दिया।

"उसके बाद ?" सोमा ने उत्सुकता से पूछा।

अमर : "उसके बाद फिर वही दिल्ली के बाग, कॉलेज, जमुना का किनारा" सोमा ने वाक्य पूरा किया : "और वही घोड़ों की लीद वाला मकान, गन्दी गलियों की खाक छानना...यही न ?"

अमर सोमा का आशय समझ रहा था। बोला : "मैं तो अपनी बाबत कह रहा था, तुम स्वतन्त्र हो; एक, दो, तीन, जितनी फिल्मों में चाहो काम करो।"

सोमा को अपने कटाक्ष पर पछतावा हुआ। वह अमर के पास आकर बैठ गयी। अमर के हाथों से ब्रुश छीन लिया। उसके विशाल कन्धों पर मुख रखती हुई कहने लगी : "आप और मैं जुदा तो नहीं, हम जो करेंगे साथ-साथ करेंगे, साथ-साथ रहेंगे। यह कैसे सम्भव है कि आप चले जायें, मैं यहाँ रहूँ—ऐसा कभी न होगा।"

अमर ने ब्रुश रख दिया और प्रत्येक शब्द पर जोर देता हुआ कहने लगा : "तुम्हारे ऐसे ही विचार हैं तो मैं तुम्हें सलाह दूँगा कि तुम यह काम छोड़ दो। जो काम करना हो पूरी तन्मयता के साथ ही करना चाहिये। अपना काम ही जीवन की साधना है।"

सोमा ने कुछ सोचकर उत्तर दिया : "मैं तो इस काम को ही जीवन की साधना नहीं मान सकती। और जब चाहे छोड़ भी सकती हूँ। घर और बाहर दोनों को जब तक साथ-साथ निभा सकूँगी तभी तक यह करूँगी।"

"यही तुम्हारी भूल है" अमर ने उठते हुए कहा।

सोमा : "मैं यह नहीं मानती।"

इस प्रश्न पर दोनों में गहरा मतभेद था। कई बार तो गरमागरम बहस भी हो जाती।

आखिर अमर कह देता : "अभी छः महीने तो इस प्रश्न पर विचार ही न करो। हमने जो समझौता किया है—मैं उस पर कायम रहूँगा। बाद में पुनर्विचार कर लेंगे।"

◇ ◇ ◇

समझौते के ये ५ महीने बीत गये। 'कसौटी' फिल्म का शूटिंग समाप्त हो गया। थोड़े बहुत "रीटेक" लेने थे। वे भी ले लिये गये।

फिल्म के बड़े-बड़े पोस्टर शहर की दीवारों पर चिपक गये। उनपर सोमा का नाम सबसे मोटे अक्षरों में लिखा गया।

एक सप्ताह बाद यह फिल्म एक साथ पाँच सिनेमा-भवनों में दिखायी गयी। तब इम्पीरियल हाल के बाहर सोमा कठिनाई से हाल तक पहुँची। भीड़ ने सोमा की मोटर रोक ली।

बड़ी फिल्म में उसका अभिनय, उसका रूप, देखने के बाद दर्शकों ने तुमुल हर्षध्वनि की। अखबारों के मुखपृष्ठ इस नवोदित फिल्म-तारिका की छवि से जगमगा गये। पारखी लेखकों ने भी सोमा को नवोदित तारिका लिखा। हर्षावेग से रोमांचित अमर ने भी सोमा का हाथ पकड़कर कहा : "सचमुच गजब कर दिया सोमा तुमने।"

इस अप्रत्याशित सफलता से सोमा का छः महीने बाद फिल्म-क्षेत्र से संन्यास लेकर दिल्ली वापस जाने का प्रण विस्मृत हो गया। अमर को कभी यह कहने का साहस न हुआ कि तुम्हारे छः महीने हो गये, अब वापस चलो।

सोमा का जीवन तो नये रंग में रंगा ही जा रहा था। सफलता के प्रवाह में उसकी नाव बड़े वेग से बह चली। फिल्म-निर्माता झरोखेलाल जी स्वयं फूलों का गुलदस्ता लेकर भेंट देने आये। सोमा ने फूलों को सजाते हुए औपचारिक रूप से कहा : "मैं आपकी कृतज्ञ हूँ।"

झरोखेलाल जी ने प्रत्येक सफल अभिनेत्री की प्रशंसा के लिये कुछ

घिसे-पिटे मुहावरे याद कर रखे थे। अपने मोटे-मोटे होठों से उन्हींका पिष्टपेषण करते हुए कहा :

"फिल्म-जगत् को आपमें नयी विभूति मिली है। हमारे फिल्मी-जगत् में संस्कारी और प्रतिभाशालिनी तारिकाओं की बड़ी कमी है; आपने उसकी पूर्ति ही नहीं की बल्कि नगे कलाकारों के लिये द्वार खोल दिया। यह काम स्वयं में युगान्तरकारी है। आपने फिल्म-कला को नया मोड़ दिया है।"

'कसौटी' के प्रथम प्रदर्शन के अवसर पर महेशचरण जी भी दिल्ली से आये थे। उन्होंने भी वैसे ही कण्ठस्थ किये हुए शब्द कहे : "आप अब फिल्माकाश की ज्योत्स्नामयी तारिका बन गयी हैं। कोटि-कोटि आँखें आपकी कला पर मुग्ध होंगी। मैं इस चमत्कारी विजय के लिये आपको बधाई देता हूँ।"

स्टूडियो में आज सबकी आखें सोमा पर लगी हुई थीं। महेशचरण जी ने सोमा की आशातीत सफलता के उपलक्ष्य में फिल्म-क्षेत्र के सभी दिग्गज निर्माताओं, निर्देशकों और वितरकों को ताज होटल में दावत दी।

दावत के बाद सोमा को उन्होंने एक नसीहत भी दी। उन्होंने कहा : "सोमा जी, अब आपको साधारण स्थिति में नहीं रहना चाहिये, लाखों लोग आपको फ़िल्म-तारिका के रूप में पहचान गये हैं। आपको अपने रहन-सहन में कुछ मौलिक परिवर्तन करने होंगे। अपना रहन-सहन भी ऊँचा रखना होगा और मेल-जोल भी ऊँचे दर्जे के लोगों से ही रखना होगा।"

"तो इसका मतलब है कि अभी तक मेरा मेल-जोल नीचे दर्जे के लोगों से था ?" सोमा ने सशंक भाव से पूछा।

महेश : "नहीं, आप जानती हैं दुनिया में इस ऊँच-नीच का मापदंड

पैसा ही है। मेरा मतलब है कि आपको ज्यादा पैसेवालों से ही खाना-पीना, बात-चीत रखनी होगी और यदि ऐसा न होगा तो आप दुनिया की निगाहों में गिर जायेंगी। लोग सोचेंगे कि आप फिल्मी-तारिका नहीं हैं, मामूली स्त्री हैं।"

सोमा : "तो समझ लें।"

महेश : "लोग जितनी आसानी से ऊँचा उठा लेते हैं उससे भी ज्यादा आसानी से नीचे गिरा देते हैं। और गिरकर उठना मुश्किल हो जाता है।"

सोमा महेशचरण जी के संकेत खूब समझती—उनसे सहमत भी थी। इस ऊँचे दर्जे की उपलब्धि के लिये ही तो उसने फिल्म-क्षेत्र में, प्रवेश किया। रात भर उसे नींद नहीं आयी। प्रसन्नता के अतिरेक में भी स्नायु-ग्रन्थियों में तनाव आ जाता है। सोमा का तन-मन भी इस ईर्षातिशयजन्य अनिद्रा से पीड़ित था।

दूसरे दिन महेशचरण स्वयं मोटर लेकर आये और सोमा को साथ लेकर कई बँगले दिखा लाये। उनमें से पामकोर्ट नाम का एक छोटा-सा नया बंगला तय भी कर लिया। किराया भी तीन महीने का पेशगी ही दे दिया गया।

सोमा ने टोकते हुए कहा : "यह आप क्या करते हैं ?"

महेशचरण : "इसकी आप चिन्ता न करें। आपके अगले कन्ट्राक्ट में से रकम कट जायेगी।"

यह स्थान शहर से दूर जुहू तट पर था। कवि-हृदय अमर को इस रम्य स्थान पर रहने में प्रसन्नता ही थी—किन्तु उसने जब वह जगह देखी तो कहा : "यहाँ सवारी की कठिनाई रहेगी।"

सोमा ने बात काट दी : "मोटरगाड़ी तो रखनी ही होगी।"

अमर : "गाड़ी के दाम दस हजार कहाँ से आयेंगे ?"

सोमा ने पर्स से पाँच हज़ार का चैक निकालकर देते हुए कहा :

"अगले ६ महीने का कन्ट्राक्ट २० हजार का है, ये पाँच हजार महेशचरण जी पेशगी दे गये हैं।"

अमर : "इसे तुम अपने पास ही रखो, मैं नहीं रखूँगा।"

"नहीं यह तुम्हें ही रखने होंगे" सोमा ने चैक लौटा दिया।

अमर : "तुम्हारी मेहनत के रुपये हैं, मेरा उसमें कोई भाग नहीं।"

सोमा ने रूठे स्वर में प्रतिवाद किया : "मेरा सब तुम्हारा है और तम्हारा जो कुछ है वह मेरा भी है।"

दोनों में मेरा-तेरा के इस भेद-भाव का बीज उस चैक के मिलते ही आज पहले दिन अंकुरित हुआ था। अमर के मन में सोमा की सफलता से प्रसन्नता भरी थी किन्तु इस सफलता के साथ जो परिवर्तन उसकी परिस्थितियों में आ रहे थे उनसे वह आशंकित हो उठा था।

◇ ◇ ◇

सोमा तो सारी रात यही सोचती रही कि मकान किस तरह सजाया जाय। मोटर किस रंग की होगी, पर्दे किस रंग के होंगे, सोफे की बनावट कैसी होगी, फर्श पर जो कालीन बिछाया जायेगा वह किस नमूने का होगा।

यही सोचते-सोचते उसके स्मृति-पटल की तहों में कोई चित्र बनता नजर आने लगा। ऐसा मालूम होता था कि कोई भूली-सी याद स्मृति-पट पर अंकित होती जा रही है। वह चित्र वैसा क्यों बन रहा था, यह उसे भी मालूम नहीं था। आजतक उसे दीवार पर सजावट करवाने और सोफा चुनने का मौका नहीं मिला था, मोटर भी नहीं खरीदी थी और रंगों के चुनाव का प्रश्न भी नहीं आया था। लेकिन आज इन प्रश्नों का हल खुद ही उसके दिमाग पर लिखा जा रहा था। सुबह उठने

तक उसके मन में सब चीजों की रूप-रेखा लगभग बन चुकी थी।

महेशचरण जी सुबह ही मोटर लेकर आ गये और सोफासेट, परदे, अलमारियाँ, ड्रेसिंग-टेबल, गुलदस्ते खरीद लिये गये।

दो-तीन दिन में दरवाजों पर झालरी पर्दे टाँग दिये गये, सोमा का मकान सज गया, फर्श पर ईरानी कालीन बिछ गया, उसे देखकर सोमा की स्मृति में डूबा हुआ एक चित्र स्पष्ट रेखाओं में खिंचने लगा। उसे ध्यान आया कि ऐसी ही सजावट का कमरा कभी उसने पहले भी देखा था। वह स्वप्न तब टूट गया था। आज फिर वही स्वप्न मूर्तरूप में सामने प्रगट हो रहा था।

हमारे मन पर बचपन में कुछ चित्र खिंचते हैं। महाकाल का प्लावन उन्हें मिटा देता है। लेकिन, मिटकर भी उसकी धुँधली-सी आकृति शेष रह जाती है। बालपन की स्मृति-रेखाएँ बड़ी गहरी अंकित होती हैं। सपना-सा बनकर वह हमारे अन्तर्मन में पैठ जाती हैं। उन्हें ही समूर्त करने को हम जीवन भर श्रम करते हैं और जब कभी उन्हें फिर स्पष्ट रूप में अंकित कर पाते हैं तो समझते हैं कि हमारे सपने पूरे हो गये हैं। आज सोमा का सपना भी सप्राण हो उठा।

सोमा इन स्वप्नों में डूब चली थी कि दरवाजे पर खट-खट हुई। चौंककर उसने देखा : वहाँ और कोई नहीं, उसके बचपन का साथी कुमार था। अवाक्-सी देखती रह गयी, मुँह से एक भी शब्द न निकला। यह भी न कह पायी, 'आइये'।

कुमार भी एक क्षण चित्रवत् खड़ा रहा। सोमा उसे देख खिलखिला कर हँस पड़ी। यह हँसी भी विचित्र थी। हम जब किन्हीं परिस्थितियों में अपने को अवश-सा पाते हैं तो आसपास की उलझनें तोड़ने के लिये हंस पड़ते हैं। हँसी का उत्तर हँसी में ही मिला। कुमार भी कुछ दबी-सी हँसी में हँस पड़ा।

दोनों सोफे पर बैठ गये। कुमार के अप्रत्याशित आगमन से विमुग्ध-

सी बनी सोमा ने पूछा : "रास्ता भूल गये ।"

कुमार : "भूल नहीं गया, सब सोच-समझकर आया हूँ। और अब तो बम्बई आना-जाना रहेगा ही। अब मैं सेठ बनवारीलाल एण्ड सन्ज का कानूनी सलाहकार हूँ। यहाँ पास ही मकान लिया है। पहले तुम्हारे पास आने का साहस न हुआ, कल तुम्हें पड़ोस में आते देखा तो आ गया। तुम्हें ढूंढ़ना अब कठिन नहीं रहा। दीवारों पर तुम्हारे रंगीन पोस्टर लगे हैं। यों मुझे फिल्मों का शौक नहीं, लेकिन कल तुम्हारी तस्वीर देख आया।"

सोमा : "बड़ा एहसान किया ? कैसा लगा चित्र ?"

कुमार : "तुम्हें मालूम है मुझे फिल्में पसन्द नहीं।"

सोमा : "तो गये क्यों देखने ?"

कुमार : "फिल्म देखने नहीं, तुम्हें देखने गया था।"

सोमा : "तुम्हें मेरा पता कैसे लगा ?"

कुमार : "तुम्हें अब कौन नहीं जानता ? लेकिन मैं तो अब भी कहूँगा तुमने फिल्म में काम करके अच्छा नहीं किया।"

सोमा : "तुम अभी पुरानी जिद पर अड़े हो।"

कुमार : "जिद नहीं, अपनी-अपनी राय है।"

सोमा : "अपनी राय अपने पास ही रखनी चाहिये। बड़ी कीमती वस्तु होती है।"

कुमार : "रखता तो अपने पास ही लेकिन फिल्म के परदे पर तुम्हारे लिये लोगों का अपशब्द कहना मुझसे नहीं देखा जाता—मैं तो अब भी यही कहूँगा कि तुम यह काम छोड़ दो।"

कुमार के आवेश से सोमा ने यह तो समझ लिया कि वह अब भी उस पर अधिकार समझता है। मन ही मन सोमा प्रसन्न हुई।

"पहले चाय पी लो। मैं अभी तैयार करके लाती हूँ।" कहकर सोमा अन्दर चाय तैयार करने चली गयी।

कुमार ने कमरे में चारों ओर नजर दौड़ाई तो उसे वह कमरा बिल्कुल ऐसा ही लगा जैसे उसका अपना कमरा हो।

सोमा वापस आयी तो कुमार बोला : "यह कमरा तो बिल्कुल अपना-सा मालूम होता है।"

सोमा अनजाने ही दिल्ली के बँगले जैसा फर्नीचर खरीद लायी थी। इस सत्य को स्वीकार करने में उसे संकोच होता था और कुमार के मुख से तो वह इसे कदापि नहीं सुनना चाहती थी।

सोमा ने उस पर व्यंग करते हुए कहा : "यह सब वैसा कैसे हो सकता है। तुम्हारा वह बड़ा घर, बड़े घर के ठाट-बाट यहाँ कहाँ ? बड़े घरवालों और छोटे घरवालों में फर्क तो रहता ही है।"

कुमार सोमा के व्यंग को पहचान गया और चुप हो गया।

थोड़ी देर में सोमा ने प्रस्ताव किया : "चलिये बाहर सैर कर आयें।"

कुमार को मालूम नहीं था कि सोमा ने नयी गाड़ी ली थी। उसने सहज भाव से जवाब दिया—"चलिये मैं गाड़ी लाया हूँ।"

सोमा को अपनी गाड़ी दिखाने का मौका मिला, बोली : "मैंने भी नयी गाड़ी ली है, आज उसी पर चलेंगे। यह मोटर भी वैसी ही डॉज गाड़ी थी जिस पर सोमा और कुमार रोज घूमने जाते थे। उस पर बैठकर कुमार जब ड्राइव करने लगा तो उसे ऐसा ही मालूम हुआ कि वह अपनी ही गाड़ी चला रहा हो। जुहू से चलकर गाड़ी वरसोवा पहुँच गयी।

जुहू के समुद्र-तट से वरसोवा के समुद्र-तट तक जाने का उस समय उद्देश्य तो यह था कि सोमा कुमार के सामने अपनी गाड़ी का प्रदर्शन करना चाहती थी लेकिन दूसरा उद्देश्य भी सिद्ध हो गया—वहाँ पूर्ण एकान्त मिल गया।

समुद्र-तट उस समय बिल्कुल सुनसान था। गाड़ी एक ओर खड़ी

करके दोनों तट पर बैठ गये। उस समय सूर्यास्त हो चुका था। समुद्र की लहरें तट से टकराकर वापस लौट रही थीं।

कुमार ने कहा : "देखो, समुद्र कितना विशाल है।"

सोमा ने उत्तर दिया : "किन्तु अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता, और मेरी राय में इन्सान समुद्र न होकर नदी की धारा है।"

कुछ मछुए जाल में मछली पकड़कर ले जा रहे थे। मछली तड़प रही थी। कुमार ने कहा : "बेचारी कितनी तड़प रही है। पानी का जीव हवा में नहीं रह सकता।"

सोमा : "कुछ जीव हैं जो हवा-पानी दोनों में रह सकते हैं।"

कुमार : "हर वस्तु की तरह जीव का भी अपना स्थान होता है, वहीं उसकी शोभा होती है।"

सोमा ने व्यंग किया : "शोभा-अशोभा शब्द बड़े घर वालों को ही शोभा देते हैं।"

कुमार ने इस व्यंग का तो कोई उत्तर नहीं दिया, लेकिन सोमा से फिर फिल्मी काम छोड़ने का आग्रह करने लगा। उसने बतलाया :

"उस दिन फिल्म देखते हुए कुछ लोग तुम्हें देखकर सीटियाँ बजा रहे थे, मुझे गुस्सा आ गया। हाथा-पाई हो गयी, यह देखो···"

कुमार ने कन्धे का कपड़ा हटाकर दिखाया। वहाँ किसीके दाँतों के निशान थे।

कुमार ने बतलाया : "उसकी बदतमीजी पर मैं अपने को काबू में न रख सका। मैंने उसे थप्पड़ मारा, उसने मुझे दाँतों से काट लिया।"

सोमा कुमार का घाव देखकर द्रवित हो गयी। उसका भाव बदल गया। व्यंग का स्थान सहानुभूति ने ले लिया। कुमार ने इस भाव-परिवर्त्तन का लाभ उठाकर सोमा का हाथ अपने हाथ में ले लिया, लेकिन तब सोमा चौंक पड़ी और हाथ पीछे खींच लिया।

कुमार ने कहा : "क्यों, क्या बिजली है हाथ में ?"

"हाँ।"

"कितनी वोल्टेज।"

"तुम्हारे लिये तो एक भी बहुत है।"

"क्यों ?"

"तुममें दम ही कितना है" सोमा ने व्यंग करते हुए कहा।

"दम क्यों नहीं।"

"अभी दूध पीते बेबी जो हो तुम। पिता जी की गोद के सिवाय कुछ जानते ही नहीं, है न ?"

अक्षय चुप था।

सोमा ने कहा : "तुम्हारी होने वाली बहू के भाग्य पर मुझे दया आती है।"

"क्यों ?"

"उसके पास बैठने को पिता जी से परमिट लेनी पड़ेगी।"

"मैं शादी करूँगा ही नहीं।"

"क्यों, अपने जितनी कोई योग्य कन्या नहीं मिलती ?"

"मुझे शादी से डर लगता है।"

"डरपोक हो, मुझे तो कभी संदेह नहीं हुआ।"

"जहाँ तक स्त्रियों और शादी का सम्बन्ध है, मैं डरपोक ही हूँ।"

"किसी स्त्री को जानते भी हो या यों ही कह रहे हो।"

कुमार : "जानता तो अभी तुम्हारे सिवाय किसीको नहीं। पिता जी कहते हैं, स्त्रियाँ इंसान को कमजोर कर देती हैं। अपने ही यहाँ देख लो, माँ जी ने पिता जी के निर्मम व्यवहार से तंग आकर आत्मघात किया। मासी ने शरबत में साइनाइड घोलकर पी लिया था। और मेरे कई मित्र हैं जो रोज गला दबाकर मरने की कोशिश करते हैं। शादी के बाद सबको रोते ही देखा है।"

इन्हीं बातों में दो घंटे गुजर गये। कुमार सोमा को उसके घर छोड़-

कर अपनी कॉटेज में चला गया। सोमा अपने नये मकान में आ गयी।

◇ ◇ ◇

इस नये घर में सोमा पूर्णतया सन्तुष्ट और आश्वस्त अनुभव कर रही थी। लेकिन अमर को इस नये घर में नयी परेशानियाँ उठानी पड़ गयीं।

जब उसने दरवाजे की घंटी बजायी तो सोमा ने अमर को देखकर "जरा ठहरिये, मैं दूसरा दरवाजा खोलती हूँ।" कहकर वह दरवाजा बन्द कर दिया और दूसरी ओर का दरवाजा खोला।

अमर ने सोचा : "जो दरवाजा खोला था उसमें से ही सोमा ने उसे अन्दर क्यों नहीं जाने दिया। पहले तो इन दो दरवाजों में कोई अन्तर नहीं माना जाता था। सोमा द्वार पर बैठी उसकी राह देखा करती थी, दूर से ही देखकर दौड़ी-दौड़ी आती और बिना घंटी खटके दरवाजा खोल देती थी। आज उसके खड़े-खड़े सोमा ने खुला दरवाजा बन्द कर दिया था। दूसरा दरवाजा खुला तो वह भीतर आया।

सोमा बोली : "आपके बूट बहुत मैले हो गये है। बैठक में कीचड़ हो जाता इसीलिये मैंने उधर का न खोलकर इधर का दरवाजा खोला है। फिर पायदान की ओर इशारा करके उसने कहा :

"इस पर बूट साफ कर लीजिये।"

अमर वहीं बूट रखने लगा तो सोमा ने आपत्ति की, "नहीं, नहीं, यहाँ नहीं। वहाँ रैक पर ही उसे रखिये।"

बूट वहाँ रखकर घबराया-सा अमर अन्दर गया। पानी माँगा। सोमा तश्तरी में एक नाजुक से गिलास को रखकर पानी लायी। पहले तो उसे मामूली गिलास में पानी मिल जाता था, आज इस नजाकत से

पानी मिलने पर अमर को सन्तोष हुआ। उसने कहा: "अच्छा, मैं समझ गया। आज तुम नये घर में नये फर्नीचर के साथ नये गिलास भी ले आयी हो। लेकिन मुझे तो उन पुराने गिलासों से भी कोई एतराज नहीं था। यह दिखावट की चीजें तो बाहरवालों के लिये हैं। उनका मान बढ़ाने के लिये ही इनका प्रयोग होना ठीक है।"

सोमा बोली: "आपका मान बढ़ाने में भी तो मुझे खुशी ही होती है। मेरे लिये तो आपका मान भी बहुत बड़ा है।"

अमर: "हाँ, मगर मेरे मान के लिये तो तुम्हारे ओठों पर हल्की-सी मुस्कान ही काफी है।"

अमर जब पानी पी चुका तो सोमा बोली: "अब तुम स्लीपिंग सूट पहन लो।"

अमर ने कहा: "मुझे इन्हीं कपड़ों से नींद आ जायेगी। बहुत थक गया हूँ।"

सोमा बोली: "मैं जानती हूँ आप थक गये हैं। लेकिन सोने से पहले कोई आ गया तो तुम्हें अन्टाइडी देखेगा।"

अमर: "तो क्या हुआ, जो मिलने आयेगा वह हमें मिलने आयेगा कि कपड़ों को।"

सोमा: "लेकिन बाहरवालों के सामने अपनी हैसियत के कपड़े ही पहनकर जाना चाहिये।"

अमर बोला: "हाँ, मैं तो भूल ही गया था कि तुम्हारी हैसियत एकदम बढ़ गई है। उसे कायम रखने के लिये तुम यह भी जरूरी समझती हो कि तुम्हारे पतिदेव भी उसी हैसियत के कपड़े पहनें?"

सोमा: "हाँ, ठीक तो है। मेरी जो भी हैसियत है वही आपकी है।"

अमर: 'मुझे तो दूसरों की नजरों में अपने को हैसियत वाला

दिखाने की कोशिश अच्छी नहीं लगती । इन दिखावटी बातों में मेरी रुचि नहीं ।"

सोमा ने कहा : "मुश्किल यही है कि तुम व्यावहारिकता का कोई मूल्य ही नहीं लगाते ।"

अमर : "मैं अव्यावहारिक और गँवार ही अच्छा ।"

सोमा ने पास बैठकर बड़े धैर्य से समझाते हुए कहा, "देखो, जहाँ विद्वत्ता की बात होगी, मैं तुम्हारी बात मानूँगी । लेकिन जहाँ व्यावहारिक बात है वहाँ तुम मेरी बात आँख मींचकर मान लिया करो । मैं जो कुछ कहूँगी अपना और तुम्हारा भला देखकर ही कहूँगी । अच्छा तो अब उठो और नये कपड़े पहन लो । अक्षय आता होगा, उसके साथ क्रिकेट क्लब खाने पर जाना है ।"

यह कहकर सोमा ने अलमारी से शार्कस्किन का एक सूट निकालकर अमर के सामने रख दिया । सूट को उलट-पलटकर अमर ने देखा और कहा : "यह तो इतना चिकना है कि उँगली इस पर से फिसलती है । मुझे चिकनी चीज़ें पसन्द नहीं ।"

"क्यों ?"

"इन्हें छूते ही ऐसा लगता है जैसे साँप की केंचुली होती है ।" लेकिन सोमा का आग्रह मान उसे वह चिकनी बुशर्ट भी पहननी पड़ी । स्वभाव से ही उसे सादे और ढीले कपड़े पसन्द थे । आज यह कसी हुई लेकिन चिकने कपड़े की पेन्ट-कोट पहनकर उसने अनुभव किया कि उसका अंग-अंग किसी अजगर ने जकड़ लिया है ।

कुछ देर बाद अक्षय उन्हें ताजमहल ले जाने के लिये आ गया । सामने नये कपड़ों में पेश होते हुए अमर को बहुत संकोच हुआ । उसे ऐसा लगा कि वह किसी और की मृगछाला पहनकर उनके सामने जा रहा है । वह सजा हुआ कमरा भी उसे अपना-सा नहीं लग रहा था । किसी भी चीज़ से उसका अपनापन नही जमा था और न ही जल्दी

जमने की सम्भावना दिखलाई देती थी। सब कुछ उसे बनावटी और कृत्रिम-सा प्रतीत होता था। अक्षय से बात करने में भी वह अपने में नहीं था। उसके अन्तरमन में यह काँटा-सा खटकता ही रहा कि उसने अक्षय के समान दर्जे पर आने के लिये कपड़े पहने थे। उसका विचार बार-बार इसी बात की ओर जाता था।

अन्दर आते ही अक्षय ने कहा : "चलिये बहुत देर हो गयी, जल्दी चलना चाहिये।"

सब तैयार ही थे। बाहर निकल पड़े। बाहर गाड़ी खड़ी थी।

अक्षय ने सोमा से कहा : "पहले आप बैठिये।"

सोमा पहले नहीं बैठी। उसने अमर से कहा : "पहले आप"। यह बात उसने अमर को मान देने के लिये कही थी।

अमर ने सोचा उसे ही सबसे ज्यादा मान क्यों दिया जा रहा है। क्या उसकी मान-रक्षा की सबसे अधिक आवश्यकता है। क्या उसकी ही इज्जत सबसे कम है ? जिसे संतुलित करने के लिये यह प्रयत्न किया जा रहा है। उसे ही मान की सुरक्षा चाहिये। क्या शेष सबका मान स्वयमेव सुरक्षित था।

उसके मन में हीनतासूचक जो ग्रन्थि पड़ गई थी वह और भी उग्र हो गयी थी। मोटर में वह सबसे पहले जाकर बैठ क्यों गया ?

होटल में सब खूब सज-धज कर आये हुए थे। खाना परोसा गया। एक के बाद एक डिश आने लगी।

अक्षय ने कहा : "सुना है, आप बहुत अच्छे विचारक हैं। आपसे कुछ पूछूँ तो बुरा तो न मानेंगे ?"

अमर ने कहा : "हाँ, हाँ, पूछिये। आपको जिस बात के पूछने में बुरा न लगेगा उसके जवाब में मुझे बुरा क्यों लगने लगा ? मुझे तो यही डर है कि कहीं आप बुरा न मान जायें।"

"वह कैसे ?"

"बात यह है कि सवाल के बजाय जवाब ज्यादा तीखा होता है।"

खाते-खाते सोमा ने देखा अमर की शार्कस्किन के चिकने कोट पर मैकरानी गिर गयी है। उसने इशारा किया कि मैकरानी जरा सँभल कर खायें।

सोमा की इस बात के बाद अमर सावधान हो गया। खाना खाने के बजाय उसका ध्यान शार्कस्किन के सूट को मैकरानी के दाग से बचाने की ओर ज्यादा लगा था। जब से यह बात हुई तब से उसका विनोद भी जाता रहा।

सोमा द्वारा टोका जाना उसे अच्छा नहीं लगा। सूट को दाल से बचाने के लिये सोमा की इतनी चिन्ता उसे अखरने लगी। दिल में तो उसके यह आया कि वहीं सूट उतारकर रख दे और बेखटके खाना शुरू कर दे। बँधे मन से हास्य-विनोद की बातें नहीं होतीं। खाना जब समाप्ति पर था तो सोमा ने अमर से कहा: "बिल के पैसे किसी और को न चुकाने देना। आप खुद ही जाकर जल्दी से चुका दो।"

अक्षय सोमा की इस चाल को भाँप गया। वह खुद उठने को हुआ। लेकिन फिर सोमा ने अमर को इशारा किया और अमर हड़-बड़ाकर उठ खड़ा हुआ और कदम नापता हुआ सीधे काउँटर की ओर दौड़ा। पीठ मोड़ते ही उसका धक्का एक वेटर को लगा जो ट्रे में काफी के प्याले भरे हुए ला रहा था। टक्कर लगकर वह ट्रे उसके हाथों से फर्श पर गिर पड़ी। गरम-गरम काफी उसके पैरों पर पड़ी तो वह जोर से चिल्लाया।

अमर बहुत शरमिन्दा हुआ। उसे गुस्सा आया सोमा पर कि ऐसे उतावलेपन की क्या जरूरत थी। पैसे चुकाने में इतनी तत्परता केवल इसलिये हो रही थी कि अपनी इज्जत बढ़ी-चढ़ी दिखायी जा सके।

अमर को इस उतावली हरकत में बड़ा छिछोरापन लगा। लेकिन अब क्या हो सकता है। वेटर को आठ आने के बजाय एक रुपया टिप

देकर छुटकारा पाया। होटल वाले ने टूटी हुई प्यालियों का कोई मुग्रावज़ा नहीं लिया। इस शिष्टाचार पर सभी मुग्ध थे। इन छोटे-मोटे शिष्टाचारों की ग्राड़ में होटल वाले हज़ारों पर हाथ साफ़ कर देते हैं। उन्हें मालूम है कि ग्राज का छोटा ग्राहक कल हज़ारों का ग्रार्डर दे सकता है।

होटल-मालिक की इस उदारता को मुक्त कण्ठ से सराहते सब लोग बाहर ग्राये। गाड़ी होटल से चलकर मैरीन ड्राइव की ठंडी हवा के झोंके लेती हुई रात को घर पहुँची।

घर पहुँचने में जरा देर हो गई थी। ग्रमर जब कपड़े बदलने के लिये बैठक में से गुजरकर शयन-कक्ष की ग्रोर जा रहा था, सोमा ने उसका हाथ पकड़ लिया : "जरा ठहरो तो।"

ग्रमर रुक गया।

"यहाँ बैठ जाग्रो।" सोमा ने सोफे की ग्रोर इशारा करते हुए कहा।

ग्रमर ग्राज्ञाकारी सेवक की तरह बैठ गया।

इतनी दूर क्यों बैठे हो, इधर ग्रा जाग्रो कहते हुए सोमा ने उसका हाथ पकड़कर ग्रपनी ग्रोर ग्राने का संकेत किया।

शार्कस्किन के कोट पर हाथ फेरते हुए सोमा बोली :

"कितने सुन्दर लगते हो इस सूट में।"

ग्रमर उदासीन रहा।

सोमा उसके ग्रौर निकट ग्रा गयी।

यहाँ तक कि जो फ्रेंच सेन्ट लगाकर वह ताज में गयी थी उसकी गंध ग्रमर के श्वास-श्वास में मिल रही थी।

सोमा ने ग्रपनी कंधों तक नंगी गोरी गोल बाहें ग्रमर के गले में डाल दीं। बाहें ऊपर उठने से उसकी सिल्क की चोली से झाँकते वक्ष-मंडल ग्रौर भी ऊपर ग्रा गये थे।

सोमा की बाहों के भार से झुककर ग्रमर ने जब नीचे देखा तो

सोमा के श्वासोच्छ्वास के साथ उठते-गिरते उरोज स्पष्ट दिखाई दिये।

सोमा ने पूछा : "नाराज हो गये क्या ?"

"किस बात से ?" अमर ने पूछा।

"होटल वाली बात से ?" सोमा ने पूछा।

सोमा की चेष्टा केवल अमर की अप्रसन्नता दूर करने को थी। किंतु अमर पर सोमा की उस भाव-भंगी ने जादू का काम किया।

सोमा अमर के इतने निकट बैठी थी कि उसकी पृथुल जंघाओं के स्पर्श से भी अमर का खून उबल रहा था।

उसने सोमा को पूरी तरह आलिंगन में बाँध लिया। उसके अधर सोमा के रसपान को झुके। दोनों हाथों से सोमा को उठाकर वह शयन-कक्ष की ओर ले चला। कलाकार होते हुए भी उसकी भुजाओं में कम बल नहीं था। हाँ, सोमा को इस बाहुबल का प्रमाण उसने पहली बार ही दिया था।

सोमा को भुजाओं में उठाये-उठाये ही उसने कोहनियों से दरवाजा बंद किया, खिड़कियाँ बंद कीं और बत्तियाँ बुझा दीं।

सोमा छटपटा रही थी। वह उसके बाहु-पाश से निकलने का शिथिल प्रयत्न कर रही थी लेकिन उस प्रयत्न ने अमर के काम-ज्वर को और भी तीव्र बनाया। उसने इस विग्रह को काम-क्रीड़ा का ही भाग समझा। रति-प्रिया प्रेयसी के ऐसे विश्रृंखल प्रयत्नों से पुरुष का मदन-दीप और भी उद्दाम होता है, इसका उसे जीवित प्रमाण मिल गया।

सोमा को भुजाओं में लेकर उसने कमरे के दो चक्कर लगाये और फिर पलंग पर बैठ अपने अंक में लिटा दिया। लिटाने के बाद भी आश्लेष में शिथिलता नहीं आने दी।

लेकिन पलंग का आधार मिलते ही सोमा को हाथ-पैर पटकने का अवसर मिला।

"नहीं, नहीं, अभी नहीं।" कहकर वह छटपटाती रही। अमर उसे

काबू में करता रहा और इस काम-केलि के लहमे में दोनों पलंग के एक पार्श्व से नीचे फर्श पर आ गिरे।

आधी उठ बैठी सोमा को भी अमर ने आलिंगनबद्ध रखा, सर्वथा मुक्त नहीं किया।

"नहीं अमर, नहीं, हाथ जोड़ती हूँ, अभी ऐसा न करो।" सोमा खुशामद कर रही थी।

अमर ने जब अनुभव किया कि सोमा केवल काम-केलि के लिये कलह नहीं कर रही और यह न-न की रट का प्रयोजन मिलन की तीव्रता बढ़ाना प्रयोजन से ही नहीं है तो उसका बन्धन शिथिल हो गया। उसकी धमनियों का रक्त शान्त हो चला।

सोमा ने उसके माथे के पसीने को पोंछते हुए और अपने कोमल हाथों से उसका गालों के थपथपाते हुए कहा।

"कितने अच्छे हो तुम अमर !"

अमर के मुख में शब्द नहीं था। उसे क्रोध आ रहा था अपने आवेश पर अपनी बेबसी पर और सोमा पर भी, जो स्वकीय विवाहिता पत्नी होकर उससे परकीया की तरह व्यवहार कर रही थी।

उससे पहले भी अमर ने कई बार पुरुष बनकर सोमा से अपना अधिकार चाहा था लेकिन सोमा कभी पूर्णतः समर्पित न हुई थी। अभी नहीं, थोड़े दिन और, कहते-कहते उसने एक बरस टाल दिया था।

आज अमर ने इस न-न के पीछे छिपे रहस्य का उत्तर माँगने की कसम खा ली थी। उसने पूछ ही लिया।

सोमा : "मैं भी पुरुष हूँ···जैसे और हैं। कामजयी शंभु नहीं हूँ।"

सोमा अपनी विवशता को बड़े कष्ट से छिपाते हुए बोली : "मैं जानती हूँ अमर, लेकिन शायद तुम भूल जाते हो, अभी हमें कई मंजिलें पार करनी हैं।"

"कैसी मंजिलें ?"

सोमा ने कहा : "तुम तो ऐसी बातें करते हो जैसे कुछ जानते ही नहीं।···बाप बनने से पहले बच्चों के लिये घर तो बना लो··· और अभी-अभी तो मैंने दूसरी फिल्म का कन्ट्राक्ट किया है। वह कैसे निभेगा अगर बीच में ह. मैं··· ।"

अमर के सामने स्थिति स्पष्ट हो गयी ।

यह बात उसके मस्तिष्क में आयी ही नहीं थी। फिल्म-अभिनेत्री बनने के साथ जो जिम्मेदारियाँ आती हैं और अभिनेत्री के पति को जिन सीमा-रेखाओं के अन्दर सिमटे रहना पड़ता है उनका ज्ञान ही नहीं था उसे।

सोमा की बात सुनकर उसका पूरा मानचित्र उसकी आँखों के सामने आ गया। उसकी पत्नी जब कुमारी सोमा बनी थी तो केवल नाम को ही नहीं बनी थी, यथार्थ में भी उसे कुमारी रखना होगा, यह बात उसके सामने स्पष्ट हो गयी ।

इस तत्वज्ञान के स्पष्ट होने के बाद अमर के सब संशय मिट गये। उसे पता लग गया कि सोमा के प्रति मुग्ध दृष्टि से देखना भी अपराध है। क्योंकि वह दृष्टि कभी फलित न होगी। सोमा कुमारी है, और उसे कुमारी बनाकर रखना उसका नैतिक कर्त्तव्य ही नहीं, शुद्ध व्यावहारिक कर्त्तव्य भी है।

अपने को इस कर्त्तव्य-शृङ्खला में पूरी तरह आबद्ध अनुभव करने के साथ अमर का मन एकदम बुझ गया।

पत्नी को स्वतन्त्रता देते-देते वह स्वय सर्वथा किस तरह परतन्त्र हो गया था और उसी परवशता की जंजीरें छुड़ाते-छुड़ाते वह खुद किस तरह उन्हीं जंजीरों में बँधता जा रहा था, यह सब उसके सामने आ गया।

उसे इतना मुर्झाते देख सोमा की सहानुभूति उमड़ पड़ी। वह अमर की उदारता का लाभ अवश्य उठाते हुए उसके प्रति कृतज्ञ होना नहीं

भूलती थी, यही उसकी उदारता थी। और स्त्री होते हुए यह भी असाधारण विशेषता थी।

सोमा ने उसके झुके मुख को अपनी अंजलि में लेकर उठाते हुए कहा : "इतने उदास न होओ अमर। तुम्हीं ऐसे अवश हो जाओगे तो मेरी क्या गति होगी ? मेरी उन्नति का कुछ लाभ न होगा। मैं तुम्हें दुखी देखकर कैसे सुखी रह सकूंगी ?"

"फिर क्या करूं ?"

"खुश रहा करो।"

"खुशी बाजार मे मिल जाती तो तुमसे पैसे लेकर खरीद लाता।"

"मैं जानती हूँ, जब तक तुम अपने काम से पैसा नहीं कमा पाओगे खुशी नहीं मिलेगी, मगर यह कमाई भी तो घर बैठे नहीं होगी।"

"तो क्या गली-गली अपने चित्र लेकर घूमा करूं ?"

"हर गली नहीं तो कुछ गलियाँ ऐसी जरूर हैं जहाँ, घूमना ज़रूर फल लाता है।"

"वे कौन-सी गलियाँ हैं ?"

"वे हैं लखपतियों की गलियाँ, रेसकोर्स, सोना बाजार, चाँदी बाजार, रूई बाजार··· ।"

"इन जुओं के अड्डों पर जाकर क्या करूं ? अपनी कला बेचूं ?"

"ये रुपया कमाने के तीर्थ-स्थान हैं। उनकी यात्रा से ही इष्टसिद्धि हो जाती है। बेचने की कुछ जरूरत ही नहीं।" सोमा ने कहा।

शयन-कक्ष में दोनों ने अपने-अपने पलंग अलग कर लिये। अमर का मन बहलाने के उपायों पर सोचते-सोचते सोमा को नींद आ गयी और अमर ने अपनी पत्नी को कुमारी रखने की बेचैनी में करवटें लेकर रात गुजारी।

दूसरे दिन चाय की मेज पर फिर दोनों की भेंट हुई। अखबार में

सोमा

घुड़दौड़ के स्तम्भ देखकर सोमा को एक बात याद आ गयी। अमर से बोली :

"आज घुड़दौड़ हो आओ।"

"क्यों, रात कोई सपना आया था ?"

"नहीं, कल चैटर्जी, वही जो हमारे डायरेक्टर हैं, कह रहे थे कि छठी रेस में छठा घोड़ा ज़रूर आयेगा। जितना पैसा चाहो बना लो।"

"चैटर्जी खुद ही क्यों नहीं बना लेते ?"

"उन्होंने ५० रु० लगाये हैं, हम भी २५ लगा दें तो २५० तो बन ही जायेंगे।"

"और घोड़ा न आया तो ?"

"तो क्या, केवल २५ ही जायेंगे और तुम्हारा दिल भी बहल जायेगा।"

सोमा ने उठकर अपने बटुए से ५० रु० के नोट निकालकर अमर को देते हुए कहा : "रेस २ बजे शुरू होती है। तुम चले जाना। मेरा तो आज शूटिंग है, नहीं तो साथ जाती।"

◇ ◇ ◇

अमर आज पहली बार रेसकोर्स गया।

पहले तो उसे कुछ समझ नहीं आया। बहुत-से प्रश्न थे और हर प्रश्न में कई प्रश्न छिपे थे। घोड़ों के नम्बर कैसे लगते हैं, बोर्ड पर उनके नामों के आगे जो संख्याएँ लिखी जाती हैं उनका क्या अर्थ होता है, खेल खतम होने पर जीते हुए घोड़े का पुरस्कार कैसे बँटता है, आदि आदि।

वहाँ की चहल-पहल, भाग-दौड़, रंगीनी देखकर भी वह बहुत देर तक तो कौतूहल में खोया-सा खड़ा रहा। लोग सौ-सौ के नोट हाथों में लिये दौड़ रहे थे। किसीको बात करने की क्या, किसी ओर देखने की फुरसत नहीं थी। पूछता भी किससे ?

आखिर कुछ ऐसे लोगों से, जो दो-तीन दौड़ में जेब की सब रकम गँवाकर अकेली पड़ी बेंचों पर बैठ गये थे, पूछताछ कर उसने घोड़े पर खेलने की वैज्ञानिक परिभाषा का गूढ़ रहस्य समझा। उन्होंने भी कहा अन्य ज्ञान-विज्ञान की तरह इस विद्या की ज्ञान-ग्रंथि भी स्वयं अभ्यास से ही खुलती है।

पहली चार दौड़ों में तो उसने टिकट लिया नहीं था। पाँचवीं दौड़ का समय भी आ गया। इसमें तो उसे खेलना ही था।

'विन्डो' पर गया तो देखा कि बहुत-से जुदा-जुदा रंग-रूप, आकार-प्रकार के हाथ आगे बढ़े हुए थे। किसीको पता नहीं था किसका हाथ किससे टकरा रहा है। उन हाथों में से एक हाथ बहुत नाजुक और गोरी कलाई वाला था। एक उड़ती-सी नजर अमर ने उस गोरी कलाई वाली पर डाली। उसका चेहरा और भी मोहक था। एक क्षण देखता ही रह गया। उसकी अंगुलियाँ उसके हाथों को छू रही थीं। वह उससे प्रभावित हुए बिना न रहा। अपने घोड़े का नम्बर उसे बदलना पड़ा। गोरी कलाईवाली उस लड़की ने जब दस नम्बर का टिकट लिया तो अमर ने भी मन्त्र-मुग्ध हो, अपने लिये दस नम्बर का टिकट खरीद लिया।

तीन मिनट में परिणाम निकल आया। दस नम्बर का घोड़ा ही विजयी हुआ था। और टोट में उसने सौ रुपये दिये।

अगली दौड़ शुरू होने से पहले अमर फिर खिड़की के पास जाकर

खड़ा हो गया। उसने देखा वह गोरी कलाई वाली लड़की भी उधर ग्रा रही थी। ग्रमर ने रास्ता रोककर हाथ बढ़ाते हुए कहा : "बधाई मिस ···माफ कीजिये, मुझे ग्रापका नाम मालूम नहीं।"

वह ग्रनजान लड़की एक क्षरण के लिये तो सहमी, फिर ध्यान से ग्रमर को ऊपर से नीचे तक ग्रौर शायद उसके प्रकट भावों से ग्रप्रकट मन की गहराई तक देखने के बाद उसने कहा : "ग्राप कौन हैं, मैं ग्रापको पहचानती नहीं।"

ग्रमर को ग्रपनी धृष्टता पर दुख हुग्रा। उसे यह भी पता नहीं था कि विधिवत् परिचय प्राप्त किये बिना किसी स्त्री से बात करना सभ्य समाज के सब व्यावहारिक नियमों के विरुद्ध था।

ग्रपराधी-सा बना वह कह रहा था। "क्षमा कीजियेगा, ग्रापने ग्रनजाने में ही मेरा बड़ा उपकार कर दिया कि मैं नीति-ग्रनीति के नियम भूलकर ग्रापसे बातें करने स्वयं ग्रा गया।

"पिछली रेस में ग्रापके दस नम्बर ने मुझे भी जिता दिया। ग्रापसे सुनकर ही मैंने भी टिकट लिया था। ग्रफसोस यही रहा कि दस रुपये का ही टिकट लिया···"

ग्रमर की बात सुनते-सुनते मन ही मन विजयगर्विता-सी सविता खिड़की की ग्रोर बढ़ रही थी।

ग्रमर पीछे-पीछे चल रहा था।

"इस रेस में ग्राप किस घोड़े पर खेलेंगी ?" ग्रमर ने प्रश्न किया।

"ग्राप क्या मुनाफे में मुझे हिस्सा देंगे ?" सविता ने जरा रुखाई, लेकिन हल्की-सी मुस्कराहट के साथ पूछा।

"जरूर दूंगा। पिछले सौ में से ये पचास रुपये लीजिये ग्रौर ग्रगली रेस का घोड़ा बता दीजिये।" ग्रमर ने ईमानदार व्यापारी की तरह पचास के नोट गिनकर ग्रागे बढ़ा दिये।

"बहुत ईमानदार मालूम होते हैं ग्राप।" सविता ने एक क्षरण

रुककर एकटक देखते हुए कहा।

अमर : "मुनाफे के लालच से दे रहा हूँ, ऐसी हालत में तो हर कोई ईमानदार हो जाता है।"

"विनय भी आप में खूब है।" कहती हुई सविता आगे बढ़ती गयी। खिड़की के पास जाकर अमर ने रास्ता रोक लिया और बोला :

"इस रेस का घोड़ा तो जरूर बता दीजिये और ये लीजिये अपना हिस्सा।"

सविता रुक गयी और अमर के हाथ से पचास रुपये लेते हुए बोली, "स्वयं आयी लक्ष्मी का तिरस्कार नहीं करना चाहिये।"

सोमा के अतिरिक्त किसी दूसरी लड़की की मुस्कान अमर को आज पहली बार मधुर लगी। उसमें सोमा से भी अधिक सलोनापन था, अमर ने अनुभव किया। किन्तु इस समय वह इन विचारों में उलझना नहीं चाहता था।

बोला : "अब तो बताइये नम्बर! यह खेल भी साझे में ही रहेगा।"

सविता रुक गयी, बोली : "यही बात है तो बतलाइये, आपका जन्म-दिन कौन-सा है।"

"नौ नवम्बर।"

"बस, नौ नम्बर खेल दीजिये।"

"आप भी वही खेलेंगी?"

"एक टिकट मेरा भी ले लीजिये।" कहकर सविता ने दस का एक नोट दिया।

टिकट खरीदने के बाद उसे सविता के हाथ में देते हुए अमर ने पूछा : "आप क्या अकेली हैं?"

सविता से यह प्रश्न बहुत बार पूछा जा चुका था। इसका अर्थ भी वह खूब जानती थी। उसका उत्तर भी वह प्रश्नकर्ता की स्थिति-परिस्थिति

के अनुकूल दे देती थी। आज भी उसने वही किया।

बोली : "नहीं, साथ में ममी हैं, ऊपर बैठी हैं।"

"बहुत ही दौड़-भाग करनी पड़ती होगी आपको। इससे तो थक जाती होंगी आप ?" अमर ने उस तन्वंगी की कोमल देह-लता पर एक सरसरी नजर डालते हुए कहा।

सविता : "हाँ, घुड़दौड़ में दौड़-भाग के लिये ही तो आते हैं, घोड़े भी दौड़ते हैं, आदमी भी।"

उसी समय एक आदमी अमर के कन्धे से कन्धा टकराकर दौड़ता हुआ झपट्टे से निकल भागा था।

"दौड़ के बाद कुछ विश्राम भी तो चाहिये। अगली रेस का घोडा चुन लें।" अमर ने वृक्ष के नीचे पड़ी बेंच की ओर इशारा करते हुए कहा।

सविता को लगा, अमर दिलचस्प आदमी है। लेकिन पहली भेंट में बेंच पर एक साथ बैठना दुःस्साहस था, बोली : "नहीं, आप बैठिये, माँ मेरी इन्तजार करेगी।"

अमर : "तो अगली रेस के बाद आइयेगा। मैं यहीं मिलूँगा।"

सविता : "नहीं, आप इन्तजार न करें। मेरा कुछ पता नहीं।" कहकर वह चली गयी। ऊपर जाने वाली लिफ्ट पर चढ़ने से पहले उसने एक बार मुड़कर देख लिया, अमर वहीं बैठा था।

अगली रेस से पहले वह फिर डबल टिकट लेने आयी। अमर को वहीं बैठा देखा तो रुकी और बोली :

"ओ हो, आप तो बैठे ही हैं !"

अमर : "आपके पैसे जो देने थे। घोड़ा जीत गया। इस दफे केवल तीस रुपया ही मिले; लेकिन जीते जरूर। लीजिये टिकट का पैसा ले लीजिये।"

सविता : "वह आप ही लीजियेगा, मैं पीछे ले लूंगी।"

अमर : "आपको यकीन है कि मैं आपको बाकी रकम दे दूंगा ?'

सविता : "यकीन क्यों न हो। अगले व्यापार की आशा से आप मेरे भाग की रकम मुझे देनी ही होगी।"

अमर : "तो क्या लाभ की आशा से ही इन्सान ईमानदार होता है '

सविता की मुस्कराहट में ही इसका उत्तर छिपा था।

पैसे लेने के बाद दोनों चाय पीने बैठ गये।

सविता ने कहा : "यह भी साझे में रहेगी।"

अमर : "मतलब ?"

सविता : "आधा खर्च में दूंगी, आधा आप देंगे।"

अमर : "मंजूर है।"

बातचीत शुरू हुई। सविता ने पूछा : "आप अकेले ही आये हैं

"नहीं, माता जी साथ हैं।" अमर ने शरारत से मुस्कराते हु उत्तर दिया।

"उन्हें कहाँ बिठा दिया है ?"

"आपकी माता जी के पास ही" अमर ने व्यंग से कहा।

सविता समझ गयी। माता जी का नाम उसी औपचारिक दृष्टि लिया गया था जिससे उसने लिया था। स्पष्ट ही उसने पूछ लिया :

"साथ में कोई भी नहीं है क्या ?"

अमर : "नहीं।"

सविता : "किसलिये।"

अमर : "इसके कई कारण हैं, जिनका बयान करना मुश्किल है आप यही समझ लीजिये जो मेरे से नीचे दर्जे के साथी हैं, उनसे मे मिलना मेरी पत्नी पसन्द नहीं करती, जो मेरे से ऊपर के हैं वे मुझ मेल-जोल पसन्द नहीं करते और जो बराबर के हैं उनसे मैं मुलाक पसन्द नहीं करता।"

सविता से यह पहेली न बुझाई गयी। अनायास ही वह कह बैठी

"कारण ?"

"समान शील, और समान दर्जेवालों में कभी सख्य नहीं होता, कभी दोनों का साथ नहीं निभता।"

"नीति तो कहती है—समान शील व्यसनेषु···"

"नीति-वाक्य प्रायः उल्टे होते हैं।"

"आप विवाहित हैं न ?"

"हूँ भी और नहीं भी।"

"वह कैसे ?"

"हूँ, इसलिये कि विवाह हुआ है। नहीं इसलिये कि अभी वह कुमारी है और मैं कुमार।"

"तो आप विवाहित कुमार हैं ?"

"हाँ जी, और मेरी पत्नी कुमारी पत्नी।"

"घुड़दौड़ में आकर भी वह कुमारी रह सकती थीं। फिर वह क्यों नहीं आयी आपके साथ ?"

सविता ने पूछा।

अमर भी पूछ सकता था कि आपके पति आपके साथ क्यों नहीं आये, लेकिन सविता की बात जानने की उत्सुकता से अधिक अब उसे अपनी बात कहने की इच्छा थी। इसलिये उसने इतना ही उत्तर दिया : "मेरे साथ मेरी पत्नी के न आने के कई कारण हैं।"

"कई कारण ?"

"हाँ, एक काम के कई कारण भी हो सकते हैं। एक तो यह कि दुनिया वालों के सौभाग्य और मेरे दुर्भाग्य से मेरी पत्नी आवश्यकता से अधिक सुन्दर है।"

सविता : "आवश्यकता कितनी होती है ?"

अमर : "इतनी कि उसे बहुत अधिक पाउडर न लगाना पड़े।"

सविता : "उसका सौन्दर्य आपके दुर्भाग्य का कारण क्यों है ? सौन्दर्य तो परम सौभाग्य की बात है।"

अमर बोला : "पत्नी का सुन्दर होना तो सौभाग्य है मगर पत्नी को यह ज्ञात हो जाना कि वह सुन्दर है, पति के लिये बड़ा भारी दुर्भाग्य है।"

सविता : "जो सुन्दर होगी उसे यह ज्ञान होगा ही। मैं तो इसमें कोई दोष नहीं देखती, मगर आप जो ऐसा कहते हैं कहिये तो···"

अमर : "तब उस सुन्दर पत्नी को डर लगता है कि दुनिया उसे ही लक्ष्य बनाकर देख रही है। इससे उसके आचरण में बड़ा अस्वाभाविक दम्भ और अकारण अस्थिरता, व्याकुलता-सी व्याप जाती है और वह चाहती है कि उसका पति उसे सुरक्षा देने के लिये सारी दुनिया से युद्ध करे; पति मेरे जैसा असैनिक वृत्तिवाला जो स्वयं गया-बीता हो तो मुश्किल हो जाती है।"

सविता : "आप कोई ऐसे गये-बीते तो नहीं दिखायी देते।"

अमर ने कहा : "ऐसा तो नहीं, लेकिन पत्नी को लक्ष्य कर देखने वालों की आँख खींच लूँ, वैसा बहादुर भी नहीं हूँ। फिर एक और भी बात है।"

सविता : "वह क्या ?"

अमर : "वह यह कि मैं भी नहीं चाहता कि पत्नी मेरे साथ रेस-कोर्स में आये।"

सविता : "क्यों ?"

अमर : "बात यह है कि उसके साथ चलते हुए मेरी नस-नस में अनोखी-सी हीन भावना व्याप जाती है। मैं अपनी ही नजरों में छोटा लगने लगता हूँ।"

सविता : " यह आपकी कल्पना है। वास्तव में वैसा हो तो नहीं जाता।"

अमर : "हो तो नहीं जाता, लेकिन, जहाँ थोड़ी-बहुत जिम्मेदारियाँ भी निभानी पड़ रही हों वहाँ तो यह बात वैसी ही बुरी लगती है, जैसे

किसी एक ग्राँख वाले को दुनिया के मुख से काना भी सुनना पड़े ग्रौर सुनकर सबको क्षमा भी करना पड़े।"

सविता : "मालूम होता है, ग्राप मजाक ग्रच्छा कर लेते हैं।"

ग्रमर : "वह कैसे ?"

सविता : "जो ग्रादमी ग्रपने ऊपर हँस सकता है वही दूसरों का भी उपहास कर सकता है। ग्रापकी पत्नी के रेसकोर्स में न ग्राने का कोई वास्तविक प्रतीत होने वाला कारण ग्रापने नहीं बताया। ग्राप यहाँ ग्राते हुए उसे घर क्यों छोड़ ग्राये ?"

ग्रमर : "सच तो यह है कि मैंने उसे घर नहीं छोड़ा बल्कि उसीने मुझे रेसकोर्स में छोड़ दिया है।"

सविता : "यह तो ग्राप नयी बात कह रहे हैं। मान लिया, ग्रापने नहीं छोड़ा, उसीने छोड़ा। मगर यह भी क्यों ?"

ग्रमर : "वह भी बताता हूँ।"

सविता : "नहीं, यदि कुछ गोपनीय हो तो रहने दें।"

ग्रमर : "यों तो पति-पत्नी के बीच बहुत-सी गोपनीय बातें होती हैं लेकिन कुछ ग्ररसे से कुछ भी गोपनीय नहीं रहा। मेरी पत्नी ने जब से फिल्म में काम शुरू किया है, वह एक सामाजिक हस्ती बन गयी है। तब से गोपनीय कम ग्रौर सार्वजनिक बातें ज्यादा होने लगीं।"

सविता : "तो यों कहिये कि पत्नी ने सार्वजनिक बनकर ग्रापको भी सार्वजनिक बनाने में मदद दी। ग्राप भी दुर्ग की दीवारों से बाहर ग्रा गये।"

ग्रमर : "दुर्ग से ग्रापका मतलब घर से है ?"

सविता : "यही समझ लीजिये। हमारे घरों की रचना दुर्ग की-सी रहती है, जहाँ बाहर का व्यक्ति ग्राज्ञा प्राप्त किये बिना प्रवेश न पा सके ग्रौर ग्रन्दर का ग्रादमी बिना ग्राज्ञा बाहर न जा सके। ग्रापने उसे बाहर जाने की ग्राज्ञा क्यों नहीं दी, यह क्यों ?"

"मेरी आज्ञा की कौन परवाह करता है। वह तो कुछ बात ही ऐसी बन गयी कि उसका आना रुक गया। उसने यह अल्टीमेटम दिया कि आसमानी टाई की जगह लाल टाई पहनूं।

"मैंने आसमानी टाई पहनी हुई थी, मेरी कमीज भी आसमानी थी और कोट का रंग भी कुछ आसमानी था। वह बोली : लाल टाई पहनो।"

"मैंने कहा : अगली बार लाल ही पहन लूंगा लेकिन अब नहीं बदलूंगा।"

"वह बोली : क्यों नहीं बदलोगे ?"

"मैंने कहा : घंटों की मेहनत के बाद टाई की गाँठ सीधी बैठी है। अब इसे उतारकर नयी गाँठ बाँधने में जाने कितनी देर लग जाय। कहो तो बिना टाई के चला चलूं।"

"वह बोली : नहीं, टाई तो पहननी ही होगी और मेरे साथ जाना है तो लाल ही पहननी होगी।"

"मैंने कहा : अगर न पहनूं तो ?"

"तो तुम अकेले ही जाओ। उसने फैसला दे दिया।"

सविता को अमर के आग्रहों पर आश्चर्य नहीं था। वह जानती थी पति-पत्नी में ऐसी धमकियों का आदान-प्रदान नित्य का नियम हो जाता है। वह फिर भी यह जानने को उत्सुक थी कि इस लाल टाई के आग्रह का रहस्य क्या था। उसने पूछा : "आखिर उसे लाल टाई इतनी पसन्द क्यों ?"

अमर : "कुछ समझ में नहीं आता। लाल रंग से तो उसे कोई खास लगाव नहीं है, लेकिन टाई वह जरूर लाल चाहती है।"

सविता ने कुछ सोचने के बाद कहा : "इसमें कुछ नयी बात नहीं, उस दिन उसने कोई सुन्दर लाल फूल देखा होगा। वह उसकी आँखों में चुभा रह गया। एक बार मेरा एक मित्र लाल गुलाब लेकर आया था तब से मुझे गुलाब को लाल देखना ही अच्छा लगता है।"

अमर : "उसे देखकर आपको मित्र की याद आती होगी, इसीलिये अच्छा लगता है न ।"

सविता : "हाँ, मुझे तो शायद मित्र के प्रति अनुराग होने से ही लाल रंग के प्रति अनुरक्ति होगी। और शायद किसी मित्र की लाल टाई आपकी पत्नी की आँखों में भी चुभी हुई हो। हो सकता है कोई उसका अंतरंग मित्र हो, भाई हो, देवर हो या कोई भी हो ।"

अमर को याद आ गया कि दो-चार दिन पहले ही अक्षय लाल टाई पहनकर घर आया था। वह अक्सर लाल टाई ही पहनता था।

इस बात की याद ने उसके चेहरे पर चिन्ता-मिश्रित गम्भीरता की रेखाएँ खींच दीं लेकिन फिर बोला : "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता है। उसे मुझसे अधिक किसीसे स्नेह नहीं है ।"

सविता : "तभी वह सब दुनिया की अच्छाइयों को आपमें सिमटा देखना चाहती है। वह चाहती है कि उसे जो कुछ जिस रूप में अच्छा लग रहा है आप उसके प्रतीक बने नज़र आयें । जो रूप उसे पसन्द आया है वह उसी रूप में आपकी काया-पलट चाहती है ।"

अमर : "लेकिन, ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता। मैं जो हूँ वैसा ही स्वीकार करना होगा उसे ।"

सविता ने कहा : "आप जो कुछ हैं उससे अधिक उन्नत और विशाल और उत्कृष्ट बनाने का वह यत्न कर रही है। यह भी बड़ा दिव्य रचनात्मक कार्य है। आपकी शक्ति, योग्यता पर भरोसा न होता तो वे ऐसी आशा क्यों करतीं ।"

अमर : "बुरा यही होता है कि जब आशा फलीभूत नहीं होती तो घोर निराशा घेर लेती है और तब वह इच्छा होते हुए भी सच्चा साथ नहीं निभा सकती। साथ निभाने के नियम कुछ दूसरे हैं। वह किसी आशा से नहीं निभाया जाता। उसकी शर्तें दूसरी होती हैं ।"

सविता : "कौन-सी ?"

"सच्चा निभाव तो तभी होता है जब हम अपने साथी को जैसा वह है वैसा ही स्वीकार कर लें। कोई भी मनुष्य किसीके साथ निभाव कर सकता है, यदि वह तोल-माप छोड़कर उसे जैसा वह है स्वीकार कर ले। कोई भी व्यक्ति इतना प्रतिकूल नहीं होता कि वह आत्मीय बनने के बाद भी खलता, खटकता रहे। आत्मीय होते ही उसमें आत्मीयता की सब अनुकूलताएँ स्वयं अवतरित हो जाती हैं।"

सविता : "मालूम होता है कि आपकी पत्नी है भी कुछ कठोर और अनुशासन-प्रिय।"

अमर : "हाँ, मैं जितना ही नरम और ढीले ख्यालों का हूँ, वह उतनी ही मजबूत और कठोर है।"

सविता : "तब तो अच्छा है। आप एक दूसरे के पूरक हो गये। वह झुका लेती है, आप झुक जाते हैं। घर में शान्ति तो रहती है। नहीं तो हरदम झगड़ा-फसाद ही होता रहे।"

◇ ◇ ◇

घुड़दौड़ के बाद भी दोनों कुछ देर वहीं बैठे रहे। अब समय हो गया था। बेंचें खाली हो गयी थीं। मैदान की हरी-हरी घास पर लाखों रुपयों की लाल-लाल कतरनें बिखरी हुई थीं, जैसे उस जमीन पर खून के दाग पड़े हों, जहाँ कुछ देर पहले भयंकर युद्ध हुआ था। वही स्थान अब श्मशान-सा सुनसान हो गया था।

अमर ने उन फाड़कर फेंके गये टिकटों को देखकर कहा : "मैंने तो समझा था लोग यहाँ लखपति बनने आते हैं।"

सविता : "रेस से कोई लखपति नहीं बना, बिगड़े बहुत होंगे।"

अमर : "मैं तो लाभ की आशा से ही आया था और मुझे कुछ लाभ हुआ भी है।"

सविता : "आपको किसने बताया कि यहाँ लाभ होता है ?"

अमर : "मेरी पत्नी ने। तत्काल पैसे का लाभ तो भाग्य की बात है लेकिन उसने एक दूसरे लाभ की बात भी बतायी थी ।"

सविता : "वह दूसरा लाभ कौन-सा ?"

अमर : "उसका कहना था कि दुनिया में बड़ा बनने के लिये बड़े लोगों से मुलाकात करनी चाहिये और बड़े लोग रेस में भी मिलते हैं। उनका यह भी एक तीर्थ है।"

सविता : "कोई बड़ा आदमी हाथ आया या नहीं ? कुछ कामयाबी हुई ?"

अमर : "अभी तो आपसे मुलाकात हो पायी है। यह आप ही बताइये कि यह कामयाबी है या नहीं।"

दोनों अब घुड़दौड़ के मैदान से बाहर सड़क पर आ चुके थे। अमर ने पैदल ही बस-स्टैण्ड पर जाने को कदम बढ़ाया ही था कि सविता बोली :

"चलिये, आपको हमारी गाड़ी घर तक छोड़ आये।"

"आप कष्ट न कीजिये, मैं बस में चला जाऊँगा।"

अमर यह कहता रहा लेकिन सविता ने आग्रहपूर्वक अमर को गाड़ी में बिठा दिया।

◇ ◇ ◇

सविता की गाड़ी एक आलीशान डॉज थी। सड़क के मोड़ पर दरगाह के पास जब गाड़ी पहुँची तो सविता ने ड्राइवर को रोकने को कहा

श्रौर श्रमर से बोली, "आपको बहुत जल्दी न हो तो दस मिनट यहाँ हवा खा लें।"

श्रमर के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह किनारे की श्रोर बढ़ी। श्रमर भी पीछे-पीछे चला। ड्राइवर गाड़ी के पास खड़ा रहा। किनारे पर बनी मुँडेर पर दोनों बैठ गये। उस समय पश्चिम के श्राकाश में सन्ध्या सुन्दरी लाल चुनरी श्रोढ़े बैठी थी श्रौर पूर्व की पर्वत-माला के पीछे से सफेद झालर श्रोढ़े श्रष्टमी का चाँद निकल रहा था। काले मटमैले पत्थरों को टकराकर समुद्र की गीली लहरें जब तट से टकराकर लौटती थीं तो चाँद की किरणों से छूकर सफेद हो जाती थीं।

सविता के चेहरे के रंग भी मिनट-मिनट में बदल रहे थे।

सविता ने कहा: "मैं प्रायः यहाँ वरली पर सैर करने के लिये श्राया करती हूँ।"

श्रमर: "श्राप क्या श्रकेली श्राती हैं?"

श्राँचल को ठीक करते हुए सविता ने कहा: "श्राज-कल श्रकेली ही श्राती हूँ।"

श्रमर: "क्या रोज श्राती हैं?"

सविता: "नहीं।"

श्रमर: "यहाँ नहीं श्रातीं तो कहाँ जाती हैं?"

सविता: "क्लब में, वह देखिये जो वैलिंग्डन क्लब दिखायी दे रहा है, वहाँ भी जाती हूँ।"

श्रमर: "क्लब में जाकर क्या करती हैं श्राप?"

सविता: "क्लब में ताश खेलते हैं, खाते हैं, पीते हैं, सभी कुछ कर सकते हैं। श्रापको भी नाच श्राता है क्या?"

श्रमर: "जी नहीं, मुझे तो पत्नी के इशारों पर नाचने के श्रलावा कोई नाच नहीं श्राता। उसके लिये क्लब वगैरह जाने की जरूरत नहीं पड़ती।"

सविता : "आप शाम का समय कैसे बिताते हैं ?"

अमर : "अपने लिये तो शाम-सवेरा सब एक-सा बीतता है। शाम को भी जो पत्नी कहती है वह करता हूँ, सुबह भी जो वह आज्ञा देती है, निभाता हूँ।"

सविता : "आपकी पत्नी बड़ी सौभाग्य वाली हैं—लेकिन आपका अपना शौक भी तो होगा ? और आपका व्यवसाय ?"

अमर : "आजकल व्यवसाय तो कुछ है नहीं। चित्रकारी का शौक था—उसे ही व्यवसाय बनाने की चिन्ता कर रहा हूँ।"

सविता : "तो आप कलाकार भी हैं। चित्रकला से तो मुझे भी बेहद दिलचस्पी है। कभी अपने चित्र दिखलाइये।"

अमर : "अवश्य दिखलाऊँगा।"

सविता : "अच्छे लगे तो मैं कुछ खरीदना भी पसन्द करूँगी। आप किस शैली में चित्र बनाते हैं ?"

अमर : "बनाता तो बंगाल-शैली में हूँ—किन्तु विषय कुछ नये लेने का यत्न करता हूँ।"

सविता की कला-रुचि देखकर अमर के मन में सविता के लिये आकर्षण की नयी कड़ी जुड़ गयी। दोनों बहुत देर तक कला की नवीनतम शैलियों पर चर्चा करते रहे।

अन्धेरा गहरा होता जा रहा था। तट पर रखी बेंचों पर युगल प्रेमियों का आना शुरू हो गया था। अमर को जल्दी ही घर पहुँचने की चिन्ता थी—लेकिन सविता के साथ बातें करने में उसे ऐसा रस आया कि उठकर जाने की इच्छा ही नहीं होती थी। सविता ने भी अमर में एक सज्जन, सीधे किन्तु प्रखर प्रतिभावान कलाकार को पाया था। दोनों ने एक दूसरे में मधुर एकात्मता का अनुभव किया।

इसीलिये जब दोनों को उठकर अपने-अपने घरों की ओर चलना पड़ा तो वियोग में हार्दिक व्यथा हुई।

विदा लेते हुए सविता ने फिर आग्रह किया : "आप कल अवश्य आइये और अपने चित्र भी लाइयेगा।"

अमर ने सविता का पता नोट कर लिया।

रात भर सविता के साथ अगली भेंट के स्वप्न लेने के बाद मैरीन ड्राइव पर बने सागर महल, चौथी मंजिल पर सविता के घर पहुँचा। मकान के दरवाजे पर जो पट्टी थी उस पर लिखा था : 'सेठ धीरूभाई शाह'

घंटी बजने पर अन्दर गया तो उसने देखा सामने एक आबनूस-सा काले रंग का आदमी सफेद पोपलीन का लम्बा कोट और धोती-कुर्त्ता पहने बैठा था। उसके कुर्ते में से शरीर के साथ सटी हुई जालीदार बनियान बाहर झाँक रही थी। उसकी लकड़ी-सी सूखी काली टाँग पर लिपटी सफेद धोती में से बेडौल घुटने बाहर झाँक रहे थे। सामने संतरे के रस का गिलास पड़ा था। हाथ में अखबार था। अखबार एक ओर रखकर एक घूँट संतरे का शरबत पीते हुए वह बोले : "कहिये, क्या काम है ?"

खड़े-खड़े ही अमर ने जवाब दिया : "सविता जी यहीं हैं।"

"हाँ, यहीं हैं, आप बैठिये।"

सविता भी अन्दर से आ गयी और अमर को देखकर डाइनिंग टेबल पर बैठने का इशारा करते हुए कहा : "आइये बैठिये।"

खुद भी वह पास ही बैठ गई। नौकर थोड़ी देर में चाय दे गया।

चाय पर दोनों लम्बी बातें करते रहे। चित्रकला की आधुनिक शैलियों का तुलनात्मक विवेचन भी हुआ। अमर ने अपने चित्र दिखलाये। उसके बाद सेठ जी और सविता में जाने क्या बातें हुईं, और अन्त में सविता ने अमर से पूछा : "मैंने अभी हाल में एक कलाकेन्द्र खोला है,

आप वहाँ रोज चार घंटे आया कीजिये। उसे अपना ही समझिये। हम उसमें आपका हिस्सा भी कर देंगे और चाहें तो प्रतिमास दो सौ रुपये वेतन भी ले सकते हैं।"

अमर गद्‌गद् हो गया। उसे अपनी रुचि का काम मिल गया। खुशी में डूबा जब वह घर पहुँचा और सोमा ने पिछले दो महीनों में पहली बार उसके मुख पर मुस्कान की रेखा देखी तो उसने सोचा कि अमर अवश्य कोई मोटी चिड़िया फँसा लाया है। यह भी हो सकता है, किसी बड़े व्यापार से लाख-दो लाख की रकम का वायदा करा लाया हो या कोई लिमिटेड कम्पनी खोलने की योजना बना लाया हो। बड़ी उत्सुकता से उसने पूछा: "मालूम होता है कोई शुभ समाचार है?"

अमर: "है तो सही, पर कुछ विशेष नहीं।"

सोमा: "साधारण ही सही पर है क्या?"

अमर ने कहा: "एक कलाकेन्द्र है, वह अपना ही होगा, मुझे खर्च भी मिल जायेगा।"

सोमा बोली: "पहले तो कलाकेन्द्र कोई व्यापार नहीं। बड़े-बड़े कलाप्रेमी भूखों मरते हैं..."

अमर ने कहा: "लेकिन मासिक व्यय भी तो मिलेगा। जो आयेगा वही सही। कुछ आयेगा ही।"

सोमा: "क्या आयेगा?"

अमर: "२०० रु० देने को कहा है।"

सोमा हँस पड़ी: "दो सौ रुपये तो दो दिन का खर्च है मेरा। इससे क्या बनेगा?"

अमर ने कहा: "बनेगा तो कुछ भी नहीं, लेकिन दुर्भाग्य से यह काम ही ऐसा है कि अभी इसमें दो सौ रुपये से अधिक मिल ही नहीं सकता। जो मिलेगा वही सही। अपने मन का काम है, मन भी लगा रहेगा। कुछ काम तो करना ही होता है। बिना किये दिन भी नहीं

कटता। जेब-खर्च ही चल जायेगा।"

सोमा : "यह जेब-खर्च तो मैं ही दे दिया करूँगी।"

अमर : "लेकिन काम कौन देगा ?"

सोमा : "वह काम भी क्या जो अपमान का कारण बने।"

अमर : "इसमें अपमान की क्या बात ? कोई भी मेहनत अपमा का कारण नहीं बनती।"

सोमा : "अपनी हैसियत से कम लेना और अपनी स्थिति से क हैसियत के लोगों के साथ रहना समाज में अपमान का कारण ब जाता है।"

अमर : "हैसियत तो वही है जो दुनिया स्वीकार करे। अगर कोशि करने पर दो सौ ही मिलता है तो, दो सौ की ही हैसियत मानन चाहिये।"

सोमा : "मेरी तो दो सौ का हैसियत नहीं और आपकी हैसिय मुझसे जुदा भी नहीं हो सकती। घर की तो एक ही हैसियत होगी।"

अमर : "तो तुम्हारा मतलब है कि इस बेमेल हैसियत को और क नजरों में कायम रखने के लिये मैं निठल्ला बैठा रहूँ ? जो मिलता है उ भी ठुकरा दूं ?"

सोमा : "यह मिलना भी क्या मिलना है ? मेरे साथ काम कर वालों को जब यह पता लगेगा कि आप दो सौ रुपये पाते हैं तो, मैं भ उनकी नजरों में गिर जाऊँगी। हमारा उच्च संस्कारी होने का सब दाव झूठा हो जायगा।"

अमर : "क्या रुपयों से ही संस्कारिता बनती है ?"

सोमा : "दुनिया की दृष्टि में तो ऐसा ही होता है। वे रुपयों से ह इन्सान को तोलते हैं। आपके दो सौ रुपये स्वीकार करने से मेरी स्थि कितनी हल्की हो जायगी। मैं तो आपको कभी सलाह न दूंगी कि इ स्वीकार करें।"

अमर : "फिर क्या करूँ ?"

सोमा : "कोई जल्दी तो है नहीं। अपनी स्थिति के अनुकूल कोई नहीं मिलता तो दूसरे काम की तलाश करें। बम्बई में सब तरह के काम हैं। कौड़ियों वाले अपनी चतुराई से लाखों की सम्पत्ति जुटा लेते हैं। यहाँ ऐसे-ऐसे लोग रहते हैं जिन्हें अपनी दौलत का कोई अन्दाज नहीं। कोई बात जँच जाये, तो आँख मींचकर लाखों बहा देते हैं। जँचाने वाला आदमी चतुर होना चाहिये।"

अमर : "यह चतुराई कहीं मोल तो मिलती नहीं। चतुर चोर बनाने का कोई स्कूल तो है नहीं। तकदीर से ही किसीमें यह हुनर आता है, सीखने से तो आता नहीं।"

सोमा : "सीखने से भी आ जाता है। मुझे पहले कुछ पता नहीं था लेकिन अब बहुत कुछ देख-सुन लिया है। हमारी ही कंपनी की बात देखो, यही झरोखेलाल जी दो साल पहले दिल्ली में पकौड़ियाँ बेचते थे। हमारा डाइरेक्टर भी कोई गैरमामूली आदमी नहीं। लेकिन आज उसे भी ढाई हजार रुपये मिलते हैं। शायद आपसे वह कम पढ़ा-लिखा होगा। दुनियादारी आनी चाहिये। कोशिश करे तो आदमी सब कुछ सीख सकता है। जो काम एक आदमी कर सकता है, दूसरा भी कर सकता है।"

अमर : "यही तुम्हारी भूल है। हर आदमी हर काम नहीं कर सकता, और किसीका किसीसे मुकाबला भी नहीं हो सकता। तुलना की आदत ही खराब है। तुमने अभी नयी-नयी दुनिया देखी है। नया देखने वाले अक्सर तुलना किया करते हैं।"

सोमा : "नये का क्या मतलब ?"

अमर : "मतलब यह कि जब तुम पहले केवल घर की स्त्री थीं तो अपने माँ-बाप और मेरे सिवाय तुम्हें किसीका ज्ञान नहीं था। अब तुम दुनिया देख रही हो। तुम्हारी आँखें मुझसे अधिक सुन्दर युवकों को

देखती हैं, अधिक प्रतिभाशाली डाइरेक्टरों के संपर्क में आती हैं और अधिक चतुर मालिकों से मुकाबला करने लगी हैं। इस तुलना में मैं तुम्हें छोटा लगने लगा हूँ। यह तुलना ही बुरी चीज़ है। जिसका जो स्थान है, वही रहता है। किसीको किसीके समान बनाने की उम्मीद व्यर्थ है। यह ध्यान ही बुरा है।"

सोमा : "आपने उल्टा ही मतलब निकाला। मैं तो सबसे अधिक योग्य आपको समझती हूँ और दिल से चाहती हूँ कि आप उनसे भी आगे बढ़ें।"

अमर : "फिर वही बात की तुमने। जिस दौड़ में वे दौड़ रहे हैं उसमें मैं भाग नहीं लेता। उनसे आगे बढ़ने का सवाल ही खड़ा नहीं होता।"

सोमा झुँझलाकर बोली : "अच्छा बाबा, मैं हारी तुम जीते। मैं तुलना नहीं करूँगी। मुझसे गलती हुई।"

अमर : 'मेरे सामने तुलना नहीं करोगी, यह सच है, लेकिन तुम्हारा दिल तो तोलता रहेगा। और अब यह जानने के बाद कि मैं उनके मुकाबले तुम्हारी दृष्टि में हल्का रहा, मुझे भी असंतोष-सा ही बना रहेगा।"

सोमा : "न, न, ऐसा न कहो। मैं नहीं चाहती कि किसी भी तरह तुम्हें असंतोष रहे। तुम्हारा मन हो तो कलाकेन्द्र में ही नहीं जिस केन्द्र में चाहो काम कर सकते हो और जैसा चाहो करो। मेरा मतलब तो केवल इतना ही था कि मैं तुम्हें अपने से अधिक कमाते देखूँ।"

अमर : "अपने से भी अधिक क्यों? यह अधिक-कम की तृष्णा तुम्हारे मन से दूर क्यों नहीं होती? मैं जैसा हूँ वैसा स्वीकार करने में तुम्हें संतोष क्यों नहीं मिलता?"

सोमा : "तो क्या कोई बात ही न करूँ?"

अमर : "नहीं, बात तो करो। पर, ऐसी न हो कि जो हमारे हृदयों में दूरी बना दे।"

सोमा : "यह तुम हृदय की दूरी की बात कब से करने लगे ?"

इस आश्चर्यसूचक प्रश्न के साथ ही सोमा वहाँ से उठकर चली गयी। उसने उत्तर की प्रतीक्षा न की।

अमर रात भर कलाकेन्द्र की कल्पनाएँ करता रहा। सविता की आकृति उसकी स्मृति में धुँधली हो गयी थी, केवल कलाकेन्द्र ही चुम्बकीय शक्ति से उसके मन को खींच रहा था।

बहुत दिनों बाद उसे अपने मन का व्यवसाय मिल रहा था। सोचता था—कला में डूबकर अपने मन की रिक्तता को भर लूंगा। किसी उपयोगी कार्य के अभाव में उसके मानस-पटल पर जो शून्यता छा गयी थी—उसके दूर होने में अब केवल कुछ घंटे शेष थे। उसका भाग्य-सूर्य फिर नये दिन के साथ उदय होने वाला था।

◇ ◇ ◇

सविता का कलाकेन्द्र केवल सविता की कुछ कला-कृतियों का संग्रह-स्थल था। विवाह से पहले उसने एक निजी कला-शिक्षणालय में चित्रकला की शिक्षा पायी थी। विवाह के बाद भी उसने थोड़ा-बहुत अभ्यास जारी रखा था और जिस कमरे में अभ्यास करती थी वही कलाकेन्द्र था।

अमर की कुछ दिन की साधना से कलाकेन्द्र की प्रतिष्ठा बढ़ गयी। सविता इससे स्वयं सम्मानित हुई मानती थी।

एक दिन सविता ने कृतज्ञता प्रगट करते हुए पूछा :

"आप मुझे चित्रकला सिखलाते हैं, इसका क्या मूल्य दूं।"

"आप भी कुछ सिखा दीजिये।" अमर ने सादगी से जवाब दे दिया।

"मुझे क्या आता है ? कुछ भी नहीं।" सविता विनम्र हुई।

"क्यों नहीं, आपको संगीत आता है, नृत्य आता है।"

"मगर मुझे शास्त्रीय नृत्य कहाँ आता है। मैं तो बाल-रूम ही जानती हूँ।"

"तो वही सिखा दीजिये।"

"सीख लीजिये, मैं सिखाने को तैयार हूँ।"

"पर सीखना क्या इतना आसान है ?"

सविता : "आपके लिये कुछ मुश्किल न होगा। आपको सुर-ताल का थोड़ा-बहुत परिचय है ही। कवि होने के नाते लय तो आपकी नस-नस में रमी हुई होगी ही। शरीर भी आपका एकहरा और लम्बा है। डांस करने के लिये आइडियल है।"

अपनी प्रशंसा सुनकर अमर के मन में खुशी की लहर-सी दौड़ गयी। आज तक उसने कभी किसी स्त्री के मुख से अपनी प्रशंसा नहीं सुनी थी। विवाह के बाद पति-पत्नी का परस्पर प्रशंसा करना अस्वाभाविक-सा मालूम होता है। विवाह से पूर्व उसका किसी स्त्री से परिचय नहीं हुआ था।

अमर ने नृत्य सीखना शुरू किया। अमर के जीवन में यह पहला ही अनुभव था कि उसने अपनी स्त्री के अतिरिक्त किसी दूसरी स्त्री का स्पर्श किया हो। नाच करने से पहले उसका दिल जोरों से धड़क रहा था। सविता ने बहुत ही स्वाभाविक रीति से अमर को नाचने के स्टप बताये। दो-चार कदम सीखने के बाद ही अमर ने देखा कि सविता के अँगूठे से खून निकल पड़ा था। अमर का भारी बूट सविता के नाजुक अँगूठे पर पड़

गया था। सविता के मुख से चीख भी नहीं निकली। वह चुपके से अन्दर गयी और पट्टी बाँधकर आकर सिखाना शुरू कर दिया। लेकिन अँगूठा उसकी सेंडिल से बाहर निकला हुआ था और उसपर खून के दाग उभर आये थे। अमर की निगाह नीचे गयी तो उसने कहा : "अरे, आपको तो खून निकल रहा है ?"

सविता ने कहा : "गलती मेरी ही थी। सिखानेवालों को पैर पड़ने से पहले ही अपना पैर खिसका लेना चाहिये। मुझे सिखाने का अभ्यास नहीं है इसलिये ऐसा हो गया है। आपकी कोई गलती नहीं।"

सीखते समय नये आदमी की अंगुलियाँ पार्टनर की पीठ में खुभ जाती हैं। नौसिखिया सहज सन्तुलन खो बैठता है। उसकी अंगुलियाँ पार्टनर की हथेली को इस तरह ज़ोर से दबोच लेती हैं जैसे डूबता आदमी बचाने के लिये आये साथी की गरदन दबोचता है। उसके पैर लड़खड़ा जाते हैं और वह अपना भार दूसरों पर डाल देता है। सविता ने यह सब बर्दाश्त किया और केवल इशारे से ही समझाती गयी कि आपके हाथ ढीले ही रहने चाहियें, अंगुलियाँ पीठ में नहीं चुभनी चाहिये। आपका हाथ दूसरों के हाथ पर आहिस्ता से रखा रहना चाहिये। उसमें पकड़ नहीं आनी चाहिये।

अमर नृत्य सीखता, सविता चित्र बनाना सीखती, कला की आराधना में दोनों एक दूसरे का साथ देते, दिन न जाने कब बीत जाता, सविता और अमर, दोनों को ही समय का भान न रहता; दोनों ही यह भूल गये कि पहले उनके दिन कितने लम्बे होते थे, समय बिताने के लिये उन्हें किस प्रकार रेसकोर्स तथा क्लबों की शरण लेनी पड़ती थी। मानो ज़िन्दगी का रुख ही बदल गया।

◇ ◇ ◇

कलाकेन्द्र में अमर अत्यधिक व्यस्त रहता, घर में आना और वहाँ कदम रखना भी उसे भारी हो जाता था।

सोमा भी स्टूडियो जाती थी, लेकिन सप्ताह में तीन दिन अवश्य ऐसे आ जाते थे, जब कि उसे जाना नहीं पड़ता था। उस दिन वह सब काम आराम से करती थी। घर के सब काम भी वह अपने हाथों करना पसन्द करती थी। सुबह उठकर खुद चाय बनाती, खुद मेज पर लाती और अपने हाथों चाय बनाकर अमर को पिलाती। चाय के बाद वह घर के कोने-कोने को खुद कपड़ा लेकर साफ़ करती और सारे घर के फर्नीचर को भी झाड़ती-पोंछती थी।

अमर कहता : "यह सब काम नौकर कर लेगा। तुम क्यों परेशान होती हो। अवकाश के जो-जो क्षण मिलते हैं, उनमें तो चैन लिया करो।"

सोमा : "मुझे यह सब अच्छा लगता है। घर का काम करने से ही चैन मिलता है।"

अमर : "तो तुम काम के लिये काम नहीं, चैन के लिये काम करती हो?"

सोमा : "इन दोनों बातों में क्या भेद है?"

अमर : 'भेद यही है कि एक तो काम जरूरत पर किया जाता है, दूसरा केवल इस कल्पना से किया जाता है कि उस काम से चैन मिलेगा और तब वह जरूरत न होने पर भी किया जाता है।"

सोमा : "किसलिये?"

अमर : "इसलिये कि इससे चैन मिलता है, अपने अहं भाव को परितृप्ति मिलती है।"

सोमा : "इस परितृप्ति मिलने का भी तो कोई कारण होना चाहिये। निष्कारण तो होता नहीं है।"

अमर : "किस काम से हमें परितृप्ति मिलती है, यह हम अपनी रुचि और कल्पना के अनुसार स्वयं ही निश्चय कर लेते हैं। बाद में उस काम को करते हुए परितृप्ति का अनुभव करते हैं। वस्तुतः इससे हम किसी अभाव की पूर्ति नहीं करते। केवल अपनी ही प्यास बुझाते हैं।"

सोमा : "तो तुम्हारा मतलब यह है कि जो काम मैं कर रही हूँ, उसकी जरूरत नहीं है। केवल चैन पाने के लिये ही ऐसा कर रही हूँ।"

अमर : "ऐसा ही समझ लो।"

सोमा : "कुछ नहीं करने से तो यह अच्छा है। आप जो अपनी रुचि के काम करते हैं, चित्र बनाते हैं, वह भी तो बहुत कुछ ऐसा है।"

अमर : "वह ऐसा क्यों है ? उससे तो जरूरत पूरी होती है। आजीविका चलती है।"

सोमा : "दो सौ रुपयों में कौन-सी जरूरत पूरी हो जायगी हमारी ?"

अमर : "तुम्हारी नहीं, मेरी तो होती है।"

सोमा : "तुम्हारी जरूरत मुझसे अलग तो है नहीं। घर तो एक ही है और खर्चे भी एक हैं।"

अमर इस उत्तर से झुँझला-सा गया, बोला : "तुम्हें यह बात बार-बार कहने की जरूरत नहीं कि चित्रकला से, चित्र की एक-एक रेखा से तुम नफ़रत करती हो। मैं इस बात को अच्छी तरह जान चुका हूँ। फिर भी मैं छोड़ नहीं सकता। चित्रकला को चाहे तुम कितनी नफरत करो।"

सोमा : "नफरत तो मैं नहीं करती। लेकिन हाँ, इसमें कुछ लाभ भी नहीं दीखता। इसलिये चाहती हूँ कि आप इससे कोई अच्छा काम करें जिसमें लाभ भी हो। आख़िर व्यापार तो लाभ के लिये ही किया जाता है।"

अमर ने कहा : "लाभ, लाभ लाभ ! सुनते-सुनते कान फट गये। तुम

इन बातों को नहीं समझती तो चुप रहो। वैसे भी बिना पूछे राय देना अच्छा नहीं लगता। तुम्हारी राय तो मुझे मालूम ही है। अब जब पूछूँ, तभी और राय देना।"

◇ ◇ ◇

सोमा और अमर में ऐसा विवाद रोज होने लगा।

उससे बचने के लिये अमर ने कलाकेन्द्र में ज्यादा देर तक बैठना शुरू कर दिया। सविता को भी उत्साह मिला। दोनों बहुत देर शाम तक भी बैठे रहते। अमर के मन में कई प्रश्न उठते। वह पूछता : "आपको मेरे साथ उठते-बैठते या कभी नाचते देखकर भी आपके पति बुरा नहीं मानते ? उन्हें क्या यह सब मालूम है ?"

सविता : "बुरा तो तब मानें, जब वे भी दूसरी लड़कियों के साथ नाच न करते हों।"

अमर : "तो क्या आप इसे बुरा नहीं मानतीं ?"

सविता : "बुरे और भले की परख बड़ा मुश्किल काम है। समय और स्थान के अनुसार वह बदलती रहती है। मेरा तो विश्वास है कि नैतिकता की परिभाषा देश-काल के भेद से सदा बदलती रही है। देश-काल ही क्यों, समाज के भिन्न वर्गों में भी उसका रूप बदला हुआ देखने में आया है।"

अमर : "मैं आपसे असहमत नहीं, फिर भी आप जरा और स्पष्टता से कहिये उदाहरण देकर।"

सविता : "हमें ही देखिये, मैं यहाँ बैठी हूँ आपके साथ और सेठ जी भी मेरे नाम की माला जपते घर नहीं बैठे। वह अपनी उपपत्नी के पास गये हैं।"

अमर : "आप यह कैसे बर्दाश्त करती हैं ?"

सविता : "जिन्दगी से समझौता करके ही चलना पड़ता है !"

अमर : "सोमा तो ऐसा समझौता बिल्कुल न करे।"

सविता : "बिल्कुल न करती तो आप यहाँ मेरे साथ नहीं बैठे होते।"

अमर ने भी प्रत्युत्तर में बराबर की चोट की : "हाँ, और वह फिल्म में दूसरे लोगों के साथ प्रेम-अभिनय न कर सकती।"

इस सारी बातचीत में सविता अमर की बातें गौर से सुनती रही और अमर भी सविता की बातें ध्यान देकर सुनता रहा। अमर को रह-रह कर यह अन्तर्बोध तो होता ही रहा कि सविता और सोमा में कितना अन्तर है। एक झील है, दूसरी धारा। सोमा की सीमा है। सविता निस्सीम है। तभी तो उसकी निस्सीमता में अमर को स्थान मिला है......।

◇ ◇ ◇

उस शाम घर पहुँचकर भी अमर के मन में नैतिकता, अनैतिकता का प्रश्न ही घूम रहा था। घर में सोमा ने फिर वही प्रश्न दूसरे पहलू से उठा दिया। उसने पूछा : "कल डाइरेक्टर ने एक सीन करने को कहा। उस सीन में हीरोइन और हीरो का आलिंगन बतलाया था। मैंने ऐसे सीन में वैसा काम करने से इन्कार कर दिया। तब डाइरेक्टर ने कहा कि आपको क्या आपत्ति है। मुझे उस समय आपका ख्याल आया। मैंने सोचा आपको यह बात बिल्कुल नापसन्द होगी।"

अमर ने कहा : "मुझे तो इसमें कोई नापसन्दगी की बात दिखलायी नहीं देती।"

सोमा : "सचमुच ? ताज्जुब है ।"

अमर : "ताज्जुब की कोई बात नहीं; अभिनय में अभिनेता अपने व्यक्तित्व को भूल जाता है । वह तो कहानी के पात्र में ऐसा तन्मय हो जाता है कि इन छोटी-मोटी बातों के सोचने का उसे अवसर ही नहीं मिलता ।"

सोमा : "तो तुम्हारी राय में आलिंगन का सीन करने में कोई हानि नहीं ।"

अमर : "अभिनय के लिये ऐसा करना पड़े, तो मैं कोई भी आपत्ति नहीं समझता ।"

सोमा : "डाइरेक्टर कहता था कि कहानी में एक सीन ऐसा भी है कि जब हीरोइन बहुत पारदर्शी कपड़े पहनकर परी के रूप में नाचती है। तुम्हारी समझ में वह सीन भी आपत्तिजनक नहीं ?"

अमर ने इन सब शंकाओं का समाधान करते हुए कहा : "कला की साधना आत्मा से होती है । शरीर तो निमित्त मात्र रह जाता है ।"

सोमा : "तो क्या कला के क्षेत्र में कोई मर्यादा नहीं समझते आप ?"

अमर : "मर्यादा यही है कि इन चेष्टाओं का लक्ष्य यथाशक्ति मनुष्य की ऊँची भावनाओं को जाग्रत करना होना चाहिए ।"

सोमा ने कहा : "डाइरेक्टर यदि अनुचित बात कहे, तब भी क्या माननी चाहिये ?"

अमर : "अनुचित क्यों माने, किन्तु कम से कम इसमें कोई अनौचित्य प्रतीत नहीं होता मुझे ।"

सोमा ने कहा : "मुझसे तो यह नहीं होगा । मैं तो कोई भी काम ऐसा न करूँगी जो संस्कारी लड़कियों के योग्य न हो ।"

अमर : "तुम भी अजीब हो । फिल्म में काम करते हुए भी तुम्हारे विचार इतने संकीर्ण हैं कि तुम्हें परपुरुष के स्पर्श में भी पाप की गन्ध आती है । यही दृष्टिकोण है तुम्हारा तो तुम किस प्रकार अभिनय कर

सकोगी, फिल्म के अभिनय में कुछ स्वतन्त्रता तो लायी ही जाती है।"

सोमा को अमर से कोई समर्थन नहीं मिल रहा था—फिर भी वह अपने मन की बात कहकर अपना भार हल्का कर ही देना चाहती थी। वह कहती गयी : "आज एक और भी बात हो गई है। डाइरेक्टर कहता था कि कुछ दिन बाद शहर से बाहर जाना पड़ेगा।"

अमर : "तो तुमने क्या कहा ?"

सोमा : "मैंने कह दिया कि मैं तुम्हारे साथ बिना बाहर नहीं जाऊँगी।"

अमर : "फिर ?"

सोमा : "फिर क्या ?···वह चुप-सा हो गया, बोला कुछ नहीं।"

अमर : "आज कोई और बात हो गयी हो तो वह भी बतला दो।"

सोमा : "आज तो नहीं दो-तीन दिन पहले हुई थी। म्यूजिक डाइरेक्टर ने जाते-जाते शरारत से मेरी वेणी को छू दिया था।"

अमर यह सुनकर एक बार तो चौंक उठा—फिर सम्हलकर कहा :

"फिर क्या हुआ ?"

सोमा : "होना क्या था, पीछे मुड़कर मैंने उसके मुँह पर तमाचा लगा दिया।"

अमर : "बड़ा अच्छा किया—तब ?"

सोमा : "तब स्टूडियो में सन्नाटा छा गया। कम्पनी का मालिक भी दौड़ा आया और उसने माफी माँगी।"

अमर : "म्यूजिक डाइरेक्टर ने तो पाँव ही छू लिया होगा !"

सोमा : "नहीं तब तो वह कुछ नहीं बोला, लेकिन आज उसने अल्टीमेटम दे दिया है कि वह मेरे गीतों के रेकार्डिंग नहीं करायेगा।"

अमर यह सुनकर ठहाका मारकर हँस पड़ा।

सोमा ने पूछा : "तुम हँसते क्यों हो ? इसमें हंसने की क्या बात है ?"

अमर बोला : "मुझे म्यूजिक डाइरेक्टर की दशा पर हँसी आ रही है। बेचारा क्या जानता था कि किसी दिन ऐसा भी होगा। चलो तुमने अच्छी सीख दे दी। अब वह कभी छेड़खानी नहीं करेगा। किन्तु गीतों के रेकार्डिङ्ग का क्या होगा ?"

सोमा : "इसकी चिन्ता मुझे नहीं, डाइरेक्टर को होगी—कंपनी को होगी। मैंने जो उचित समझा वही किया। मुझे अपने सम्मान की रक्षा स्वयं ही करनी है।"

अमर : "यह तो अच्छा ही हुआ कि तुम्हारा सम्मान रहा। तुम्हें सुरक्षा मिल गयी, लेकिन मुझे डर है कि अब वे लोग तुम्हें आगे नहीं बढ़ायेंगे।"

सोमा : "आगे बढ़ना होगा तो मैं अपने गुणों से, अपने परिश्रम से बढ़ जाऊँगी। बढ़ने वाला स्वयं बढ़ता है।"

अमर : "बढ़ता तो स्वयं है, किन्तु यदि परवर्ती परिस्थितियों और व्यक्तियों का विरोध प्रबल हो जाय तो वह प्रगति रुक जाती है। इन्सान अक्सर जिससे डरता है, उसे अपनाता नहीं और दुनिया का कायदा है कि सब अपने ही लोगों को आगे बढ़ाते हैं।"

सोमा : "तो तुम्हें मेरा थप्पड़ मारना बुरा लगा ?"

अमर : "नहीं, बुरा नहीं। तुमने साहस का काम किया और अपनी प्रकृति के अनुकूल ठीक ही किया।"

सोमा : "तुम होते तो यह न करते ?"

अमर : "नहीं।"

सोमा : "तो क्या करते ?"

अमर : "उसे पास बुलाकर समझाता।"

सोमा : "उससे क्या होता ?"

अमर : "वह स्वयं अपने कृत्य पर लज्जित होता और भविष्य में कभी वैसा न करने का संकल्प करता।"

सोमा यह कहते हुए उठ गई कि मैं पाप से समझौता करने के पक्ष में नहीं हूँ। तुम इतने ढीले हो इसीलिये तुम्हारे काम भी ढीले हैं।

◇ ◇ ◇

अमर अपने चित्रो में प्रायः दृश्यों के चित्रण ही किया करता था। उसके खरीदार बहुत कम थे। सविता ने सुझाया कि वह चित्रों के लिये जीवित विषय भी ले, जीवन का सुन्दर चित्रण करे।

"उसके लिये जीवन की आवश्यकता है।" अमर ने उत्तर दिया।

सविता : "आपका अभिप्राय ?"

अमर : "जीवित सौन्दर्य का चित्रण भी बिना अनुकृति किये नहीं हो सकता। उस सौन्दर्य की कोई प्रतिमा निर्धारित ,करके ही चित्रण करना सुगम होता है।"

सविता : "आपकी पत्नी, सुना है अनुपम सुन्दरी है, उससे सुन्दर प्रतिमा कहाँ मिलेगी ? और शायद वह परदा भी नहीं करती ?"

अमर : "हाँ, चेहरे पर तो नहीं।" कहकर अमर ज़रा रुका। सविता के मन में प्रश्न था तो क्या वह कभी निरावृत्त नहीं होती—उसे भाँप कर अमर ने स्वयं कहा : "बाक़ी देह को वह सौ परदों में ढँककर रखती है।"

सविता : "आपसे भी ?"

अमर : "जी, मुझसे तो शायद और भी अधिक।" उसका इशारा था कि फिल्म में काम करते हुए वह स्टूडियो में और फिर चित्रों में लाखों व्यक्तियों के सामने जितना खुलती है उसके सामने अभी उतना भी नहीं खुलती।

सविता : "मगर वह तो आपकी पत्नी है ?"

अमर : "हाँ, विवाह तो हुआ है —"

सविता ने डरते-डरते प्रश्न किया : "तो आपके सामने क्या वह कभी सर्वथा······?"

"निरावृत नहीं हुई ?" अमर ने वाक्य पूरा करते हुए कहा, "कभी नहीं। मैं अभी केवल उसकी मुखाकृति से परिचित हूँ।"

सविता को और भी पूछने का साहस हुआ : "आपके साथ कभी शैयाशायिनी भी नहीं हुई वह ?"

अमर ने सविता के संकोच को तुरन्त दूर करते हुए सादगी से जवाब दे दिया : "उस निगाह से हमें ब्रह्मचारी कह लीजिये।"

सविता को एक बात सूझी : "तो आप भारतीय मूर्तियों से प्रेरणा लीजिये। उन मूर्तियों के चित्र तो बहुत-से कला-संग्रहों में मिलते हैं।"

अमर ने कहा : 'उन कला-संग्रहों में चित्रित मूर्तियों की अपेक्षा मूर्तियाँ ही क्यों न देख लें ?"

सविता ने प्रस्ताव रखा : "एलिफेन्टा यहाँ से दूर नहीं। इतवार को एलिफेन्टा जाने का प्रोग्राम बना लिया जाय।"

अमर : "उस दिन तो बड़ी भीड़ होती है। उस कोलाहल-कल्लोल में तन्मयता से कोई काम नहीं होता। कलाकार के लिये आवश्यक है कि वह कलाकार की गहराई में पहुँचकर कला की आत्मा को देखे। उसके लिये पूरी तन्मयता की आवश्यकता है। सामान्य दर्शक की तरह जाने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इसलिये यही निश्चय हुआ कि रविवार को छोड़कर किसी भी दिन एलिफेन्टा की यात्रा की जाये।

दूसरे ही दिन अमर और सविता ने एक लांच किराये पर लिया। अगाध समुद्र में वह छोटी-सी नाव बड़े वेग से दोनों को एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर ले चली।

अमर कह रहा था : "कितना विशाल है संसार का विस्तार !"

सविता के होठों पर था : "और कितनी गहराई है इसमें ?"

अमर अनायास कवि बन गया : "इसकी कोई सीमा नहीं, तल-अतल कुछ नहीं।"

सविता : "सीमा भी है और तल भी है—किन्तु वहाँ तक जाने का प्रयत्न करना पड़ता है। जब तक कोई उस सीमा तक न पहुँचे तब तक हम ऐसे ही असीम अतल की कल्पनाएँ करते रहते हैं।"

अमर ने समुद्री हवा के स्पर्श से रोमांचित सविता की ओर देखते हुए कहा : "कल्पना में ही तो आनन्द है—तुम नहीं मानती यह ?"

"और भय भी कल्पना में ही रहता है।" सविता ने स्थिर स्वर में उत्तर दिया ।

सविता कह रही थी : "यही बात जीवन पर भी लागू होती है—पाप-पुण्य भी प्रायः कल्पित ही रहते हैं।"

अमर का ध्यान सविता की बातों की ओर नहीं था, वह एकाग्र मन से समुद्र की सतह पर बनते फेनिल मार्ग को देख रहा था।

अमर को आत्मरत देख सविता ने भी अपने बटुए से सिगरेट निकाला और दूसरी ओर मुँह कर वह पीने लगी।

सिगरेट भी खूब चीज़ है। आदमी अपनी ही साँसों से आग जलाता है और उसमें जलकर अपने ही धुएँ को आत्मसात् करता जाता है।

आत्मरति का ही यह दूसरा रूप है।

सिगरेट से निकला हुआ धुआँ उसके चेहरे पर ऐसा छा गया जैसे किसी पर्वतीय स्रोत पर सुबह का कुहासा छा जाता है। और उस रहस्य-भरे कुहरे के पर्दे में सदा प्रवहमान झरने की कल-कल ध्वनि सविता के सहज हास्य से सदा आया करती थी।

अमर का ध्यान सविता की ओर गया तो वह तुलना करने लगा।

उसकी पत्नी सोमा हिमालय की विशाल हिम-खंड थी। वह निर्मल थी किन्तु थी सर्द चट्टान। उसीकी तरह कठोर भी। उसमें मन की निर्बलताओं को स्थान नहीं था। और सविता का स्वरूप बहता निर्झर-सा था।

अमर जब एकटक सविता की ओर देखता रहा तो सविता ने पूछा।

"आप क्या देख रहे हैं ?"

"आपको सिगरेट पीते देख रहा हूँ।"

"नयी बात है न आपके लिये ?"

"हाँ।"

"आपको शायद यह बुरा लगता है।"

"नहीं, अच्छा ही लगता है।"

सविता ने आश्चर्य से पूछा—"क्या अच्छा लगता है ?"

"धुएँ से घिरा आपका मुंह।"

"किसलिये ?"

"कह नहीं सकता क्यों ? शायद इससे बेपरवाही, अजीब मस्ती-सी झलकती है, इसलिये। मुझे स्त्रियों के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ ही देखने को मिली हैं और लज्जा के बोझ से झुके माथे को ही देखा है मैंने।"

"तो निर्लज्ज चेहरा अच्छा लगता है ?" सविता ने चोट करते हुए पूछा।

"आपने तो बहुत कठोर शब्द का प्रयोग किया। मैं इसे उन्मुक्त उल्लास कहता।"

"शब्द का भेद है, भाव एक ही है।"

"नहीं, ऐसा तो नहीं।"

"और आग निकालता चेहरा क्या अच्छा लगता है ?"

"यह भी स्वाभाविक है।"

"कैसे ?"

"आपने एक कहावत सुनी है। हम उसे ही अपने हाथों मसलते हैं जो हमें प्रिय लगता है। फूल तोडने में हमें मजा आता है। प्रेमातिरेक हमें प्रेमपात्र को मसलने की प्रेरणा देता है। यह प्रेम भी विचित्र आवेश है। भावना कोमल है मगर इसकी प्रतिक्रिया बड़ी हिंसक और पैशाचिक है।"

"यह क्या आवश्यक है कि प्रतिक्रिया हिंसक हो ?"

"आपने नहीं सुना, अमरीका में प्रेम नापने का एक यंत्र निकला है। जो प्रेमिका के होठों पर अपने होठों से जितना दवाब डाल सके प्रेम-सूचिका उतने ही प्रेम का निर्देशन करती है।"

"इसका मतलब तो यह हुआ कि प्रेम और मनुष्य की हिंसा का सीधा सम्बन्ध है।"

"हाँ, यदि प्रेम को आवेश माना जाये तो प्रत्येक आवेश में हिंसक प्रवृत्ति होती ही है।"

"क्या प्रेम ऐसा ही आवेश है ?"

"साधारणतया यही माना जाता है। आप क्या मानती हैं ?"

"मैं क्या मानती हूँ, शब्दों में कहना कठिन है। बहुत सोचना पड़ेगा अपने भावों को उपयुक्त शब्दों में बाँधने के लिये। अभी तो सोचने का मूड नहीं आ रहा।"

पौन घंटा चलने के बाद नाव एलिफेन्टा पहाड़ की तराई में जा लगी।

थोड़ी सीढ़ियाँ चढ़ने पर मुख्य गुफा में पहुँच दोनों त्रिमूर्ति की भव्य प्रतिमा देखते रहे। बाद में दायीं ओर द्वारपालिकाओं से घिरी शिवमूर्ति प्रतिष्ठापित थी।

अमर की दृष्टि उन द्वारपालिकाओं की सस्मित मुद्रा, उनके वर्तुल वक्ष, उनकी भुजाओं और पृथुल कदलीदल-सी जंघाओं पर अटक गयी।

सविता ने कहा : "न जाने वे शिल्पी इतनी सजीव प्रतिमाएँ कैसे बना देते थे।"

अमर बोला : "उनके समक्ष सजीव मॉडल रहते थे। इन विहारों की भिक्षुणियाँ कलाकारों के सामने प्रतीक बनने में संकोच नहीं करती थीं।"

"कलाकार चाहे तो आज भी ऐसी लड़कियाँ मिल सकती हैं जो कला के लिये स्वयं को समर्पित कर सकें।"

कहकर सविता ने अमर की ओर गहरे अर्थ से देखा। मानो वह परखना चाहती थी कि अमर इस ऑफर का कहाँ तक स्वागत करता है।

अमर : "ऐसी आस्था आज-कल कहाँ मिलेगी ?"

सविता : "तुम चाहो तो मैं······

अमर ने बात काटते हुए कहा : "तुम क्या ऐसी पोज में खड़ी हो सकती हो ?"

"कैसी पोज में ?"

"जैसी में वह द्वारपालिका खड़ी है।"

सविता ने पहले कुछ संकोच किया फिर, उसी भाव-भंगी में खड़ी होने की कोशिशें करने लगी।

अमर : "इस भावना में आने के लिये वैसी ही अलंकार-भूषा भी साहयक होती है।"

सविता : "ऐसी वेश-भूषा के लिये तो स्टूडियो ही ठीक है।" अमर ने भी समर्थन किया लेकिन युक्ति के तौर पर वह बोला : "जब तक देह-बुद्धि नहीं जाती आत्मा का स्वरूप प्रगट नहीं होता। विदेह होकर

ही कला की साधना होती है । देह पर वस्त्र हैं या नहीं, अलंकार हैं या नहीं, इसका ध्यान ही नहीं रहता ।"

सविता पर अमर की युक्ति का इतना प्रभाव पड़ा कि वह उसी समय वस्त्रों की चिन्ता छोड़ अप्सरा की प्रतीक बनने को सन्नद्ध हो गयी ।

उस दिन कोई अन्य यात्री वहाँ नहीं आया था ।

मुख्य गुफा के पार्श्व में एक छोटी-सी गुफा थी । सविता उसके अन्दर जाकर कपड़े उतारने लगी । अमर मुख्य द्वार से बाहर आ गया था, जिससे सविता को अप्सरा-रूप धारण करने में विघ्न न पड़े ।

बाहर आकर उसने देखा दो-तीन आदमी सीढ़ियाँ चढ़कर उधर ही आ रहे हैं । वह वहाँ से भागा हुआ लौटा और सविता को फिर पहले के समान कपड़े पहनने को कहा । लेकिन तब तक वे दो व्यक्ति गुफा तक आ गये थे ।

उन्होंने सविता को उतरे हुए वस्त्र पहनते देखा था ।

आपस में कुछ इशारे करते हुए वे गुफा की परिक्रमा कर लौट गये ।

संयोग से उनमें से एक अक्षय था ।

उनकी बोट पहले ही किनारे लग गयी ।

उस रात नौ बजे सोमा जब पामकोर्ट पहुँची तो अक्षय उसे कान में कुछ कह गया ।

◇ ◇ ◇

इससे पहले सोमा ने कल्पना भी नहीं की थी कि अमर किसी अन्य स्त्री के साथ एलिफेन्टा तक जा सकता है । वह यही समझती थी कि अमर को स्त्रियों के साथ बात करना भी नहीं आता । इसलिये वह

जीवन के प्रति निश्चिन्त रहती आयी थी। आज उसके मन में तरह-तरह की कल्पनाएँ उठने लगीं और इस विचार से वह सहम गयी कि उसकी जैसी पत्नी के रहते हुए भी वह परस्त्री के साथ बाहर जा सकता है।

सारे साहस और अनुभव के बावजूद भी सोमा अपने को सँभाल न सकी। फोर्ट के बड़े से बड़े टेलर के यहाँ महँगे से महँगा सिला हुआ उसका ब्लाउज जिस हृदय को अपने आवरण में छिपाये हुए था, वह हृदय एक साधारण नारी का हृदय था, एक गृहिणी और पति के विकास में विश्वास रखने वाली पत्नी का हृदय था, लेकिन जब उस पत्नी ने आज अपने पति को अपरिचित स्त्री के साथ जाने की बात सुनी तो उसका प्यार और अधिकार विद्रोह कर उठा। उसने सोचा अवश्य ही किसी स्त्री ने छल-कपट द्वारा अमर को वश में कर लिया है। अमर भोला है। वह किसीकी भी बात में आ सकता है। इस जंजाल से अमर को छुड़ाना उसका कर्त्तव्य है। यही कुछ सोच रही थी कि अमर आ गया। उसने पूछा : "आज बहुत देर हो गयी, कहाँ गये थे ?"

यही बात वह प्रायः जब भी कुछ देर हो जाती थी तो पूछ लेती थी। अमर पूरा बयान कर देता था। उसे उतना पूछताछ पसन्द नहीं था। छोटी-छोटी बात का खुलासा देना भी उसे अच्छा नहीं लगता था। लेकिन वर्षों से यह आदत बन चुकी थी कि सोमा के हर सवाल का जवाब खुलासा के साथ देना पड़ता था। कभी देने में चूक जाता था तो सोमा दूसरा-तीसरा सवाल पूछकर खुलासा कर लेती थी।

आज अमर ने वैसा खुलासा नहीं किया और कहा : "यों ही देर हो गयी।"

"क्या सिनेमा गये थे ?" सोमा ने पूछा।

"नहीं तो।" अमर ने भी लापरवाही से जवाब दिया। जैसे कुछ हुआ ही न हो।

"तब फिर ?"

अमर को निश्चय हो गया कि सोमा सब जान गयी थी। झूठ बोलने से खतरा देखकर उसने सब सच्चा-सच्चा बयान कर दिया कि सेठ जी के बहुत आग्रह करने पर एलिफेन्टा गया।

"एलिफेन्टा देखने में अच्छा मजा आया होगा ?" सोमा ने कहा।

अमर: "जैसा पहले आता था वैसा ही तब आया। कोई खास बात तो थी नहीं।"

"खास क्यों नहीं ? साथी अच्छा हो तो आनन्द आता है।"

"क्या अनुभव से कह रही हो ?"

"मतलब ?"

"मतलब यह कि अच्छे साथी का अनुभव तुम्हें भी होगा ही ? आखिर तुम्हें भी स्टूडियो में इतने साथी मिलते हैं।"

"मैं तो जब किसीके साथ जाती हूँ बिल्कुल व्यापारिक शिष्टाचार निभाने जाती हूँ। साथ निभाने नहीं जाती।"

"व्यापारिक शिष्टाचार कैसा ?"

"यही कि डाइरेक्टर लोग कहते हैं कि अच्छी फिल्में देखने से अच्छा काम कर सकोगी।

"लेकिन उनसे तो मेरा व्यापारिक रिश्ता है। शिष्टाचार तो निभाना ही पड़ता है।"

अमर: "तो मेरी भी यह यात्रा शुद्ध व्यापारिक यात्रा थी।"

"वह कैसे ?"

"कलाकार होने से प्रत्येक कला का निरीक्षण मेरा व्यापारिक कार्य है।"

सोमा : "तुम्हारे दिल में ज़रूर सविता के लिये कोमल भावनाओं की बाढ़ उमड़ गयी है।"

अमर : "बाढ़ तो नहीं उमड़ी लेकिन यह भी नहीं कह सकता कि मैं पत्थर हूँ।"

सोमा : "तुम तो बहुत जल्द पिघल गये। कहीं प्रेम नहीं करने लग जाना उसे।"

अमर : "तुम तो ईर्ष्या करने लगीं।"

सोमा : "ईर्ष्या तो होगी ही। यदि मैं किसीसे प्रेम करने लगूँ तो क्या तुम्हें ईर्ष्या न होगी ?"

अमर : "नहीं, मुझे तो नहीं होगी। तुम किसीसे प्रेम करोगी तो मुझे भी उससे प्रेम ही होगा। जिसे हम प्रेम करते हैं उसकी हर वस्तु प्रिय लगती है। फिर तुम्हारी प्रिय वस्तु मेरे लिये अप्रिय कैसे ?"

"खूब जानते हो। मैं इन बातों को नहीं समझती । मैं तो यही समझती हूँ कि विवाहित पुरुष का प्रेम केवल अपनी पत्नी तक होना चाहिये।"

"विवाहित पति-पत्नी के परस्पर प्रेम की जो परिभाषा तुम्हारे मन में है उसके अनुसार यही समझ लो कि मैं तुमसे ही प्रेम करता हूँ। लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं कि दूसरों से मैं द्वेष करने लगूँ, किसी-से मिलूँ-जुलूँ नहीं।"

अमर के उत्तरों से सोमा चुप अवश्य हो गयी थी—लेकिन उसके हृदय में भयंकर विचार-मन्थन चल रहा था।

बहुत रात बीते उसने अमर को जगाया और पूछा : "वह स्त्री कौन है जिसके साथ तुम एलिफेन्टा गये थे।"

"यही पूछने के लिये तुमने मुझे आधी रात को जगाया है ?" अमर ने भी प्रश्न किया।

"मैं जितना पूछती हूँ, उतना उत्तर दे दो।"

"मुझे अभियुक्त मानकर तुमने जिरह शुरू कर दी है—मैं इस तरह तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर नहीं दूंगा।"

"तो क्या जब पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाते दया की भिक्षा मागूंगी तब दोगे ?"

कहते-कहते सोमा की आँखों से आँसू टपक पड़े।

अमर ने ये आँसू पहले भी देखे थे। उनके पीछे छिपी विवशता का उसे आभास था। वह बोला : "सोमा ! क्या तुम यह समझती हो कि मैं दूसरी स्त्री के प्रेम-पाश में फँस गया हूँ ?"

सोमा : "यह भी समझने के सब कारण हैं, किन्तु मैं यह नहीं समझती।"

अमर : "तो ज्यादा पूछताछ की क्या आवश्यकता है ?"

सोमा : "इसीलिये कि मेरे विश्वास को पुष्टि मिले।"

अमर ने सोमा के सब प्रश्नों का समाधान कर दिया। फिर भी सोमा का आग्रह था : "तुम उस स्त्री से कभी न मिलोगे, मैं तुमसे इतना ही वचन चाहती हूँ।"

अमर : "लेकिन वह उस सेठ की पत्नी है जिसने मुझे कलाकेन्द्र के लिये हजारों रुपये दिये हैं।"

सोमा : "रुपये मुझसे ले लो। और उसे चुका दो।"

अमर : "और यदि वह अपना हिस्सा न बेचे ?"

सोमा : "तो कलाकेन्द्र बन्द कर दो।"

अमर कुछ देर गम्भीर मौन रहा। फिर बोला : "मैं तुमसे कहूँ कि तुम अपना काम छोड़ दो—तो क्या करोगी ?"

सोमा : "तुरन्त छोड़ दूंगी।"

अमर : "यह इसीलिये कह रही हो कि तुम्हें मालूम है, मैं ऐसा कभी न कहूँगा।"

सोमा : "कह देखो, मैं एक दिन भी आगे काम न करूँगी।"

अमर : "इसका कारण है सोमा। काम छोड़कर भी तुम बेकार न होगी। घर का काम तो तुम्हारा रहेगा ही, लेकिन मैं तो यह काम छोड़कर बेकार हो जाऊँगा।"

सोमा : "मैं क्यों न बेकार होऊँगी ?"

अमर : "क्योंकि काम करके घर के खर्च चलाना मेरी जिम्मेदारी है। उसे न निभाऊँगा और न निभाने की कोशिश करूँगा तो समाज में मेरा कोई स्थान ही न रहेगा।"

सोमा को यह बात समझ में नहीं आयी। उसका यही आग्रह रहा—"वचन दो कि सविता से कभी भेंट न करोगे।"

अमर चुप था। सोमा ने अमर के कन्धे पकड़कर, झकझोरकर कहा : "बोलते क्यों नहीं ?"

अमर : "मैं यह वचन न दूँ तो ?"

सोमा : "तो मैं समझूँगी कि तुम उससे प्रेम करते हो।"

अमर : "यह झूठ है।"

सोमा : "झूठ है तो वचन क्यों नहीं देते ?"

"वचन देना आत्मप्रवंचना होगी, जो नहीं है उसे मानना होगा, यह भी झूठ है।"

"क्यों ?"

"मेरे मन में जब पाप ही नहीं तो वचन देकर उसे स्वीकार कैसे कर लूँ।"

सोमा आग्रह करती रही—अमर ने विश्वास दिलाया—अमर ने वचन देने से इन्कार कर दिया।

◇ ◇ ◇

सारी रात सोमा ने सिसकियों में काटी। दिन भर भी आँखों से आँसू ढरते रहे। हृदय में तरह-तरह के कल्पित प्रश्न उठते रहे। उसे प्रतीत हुआ कि अमर अब उन्मत्त-सा हो गया है। उसके चेहरे पर रूखापन और ज़ुबान में तीखापन आ गया है। उसने आखिर पूछ ही लिया :

"इतनी देर कैसे लगी ?"

"जरा काम में फँस गया था।" अमर ने लापरवाही से उत्तर दिया।

"रोज-रोज तुम्हें यह कौन-सा काम रहने लगा है ?" सोमा ने फिर स्वर में कुछ विष मिलाकर पूछा।

अमर ने उत्तर न दिया।

नौकर चाय रख गया।

सोमा अभी भी खड़ी थी। जब अमर ने उसकी ओर नजर न उठायी तो सोमा अब कुर्सी खींचकर बैठ गयी। अमर ने चाय का प्याला आगे बढ़ा दिया और सोमा की प्रतीक्षा किये बगैर पीने लग गया।

सोमा पाषाणवत् जड़, निस्पन्द बैठी रही।

अमर चाय पीने में तल्लीन था। उसकी दृष्टि गुलदस्ते पर टिकी थी। लेकिन देखता हुआ भी वह कुछ न देख रहा था। उसकी दृष्टि में शून्यता थी।

सोमा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से फिर एक बार अमर को टटोला और पाया, अमर अब पहले वाला अमर नहीं रह गया था !

अमर भी इस समय शायद मन ही मन सोमा को सम्बोधन कर रहा था—यह न समझो सोमा ! कि मेरा कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। जीवन में तुमने मुझे एक निश्चित धारा में बढ़ाना चाहा—मैं बहा ! इतने वर्ष निकल गये ! लेकिन, आज मैं उस धारा से अलग जाकर खड़ा

हो गया हूँ तो तुम इस तरह बेचैन क्यों हो गयी हो। तुम मेरे गले में पट्टा डालकर रखना चाहती हो कि मैं कुमार और उनके जैसे नासमझ अमीरों के साथ दौड़ता रहूँ। ना, यह न होगा। मैं अपने पैरों पर खड़ा हूँगा। तुम्हारे कारण सोमा ! मेरा अपना अस्तित्व खो गया है। वह जब जगेगा, तब जगेगा, आज तो मैं अपने में भी शून्य हूँ। मैं तुम्हारे लिये न स्नेह, न सद्‌भाव, न आदर, न सम्मान कुछ नहीं रख सकता…

जीवन भर जो दूसरों के चलाये चला, जो दूसरों की लीक पर चला हो—वह आज अपनी राह जाना चाहता है तो इसमें उदास और ग़मग़ीन होने की क्या बात …

तुम नहीं जानतीं, मुझे अपने ही प्रति प्रेम नहीं, गौरव नहीं, स्नेह-सरलता नहीं तो दूसरों को और तुमको मन और मान देने की बात ही कहाँ उठती ?…

"सच है न ?" उसने सोमा की तरफ देखा।

"क्या सच है ?" मानो यह पूछती सोमा की नजरें अमर के चेहरे पर टिक गयीं। सोमा ने जान लिया कि अमर हाथ से छूटता जा रहा है। उसे कुमार जैसा सम्पन्न संभ्रान्त नागरिक बना देने का उसका स्वप्न अधूरा रह जायगा। कुमार न बनकर अमर सोमा के लिये अमर भी रहेगा या नहीं ? या केवल लोक-दृष्टि में पति।

न सोमा और न अमर ही कुछ बोले और इस तरह दोनों पास रहकर भी एक दूसरे से अलग हो गये। एक दूसरे को समझने में असमर्थ ! सोमा अमर को जानती थी, पर वह उसे अपना बना लेने में, अपनी इच्छानुसार चलाने में असमर्थ हो गयी है, यह स्पष्ट हो गया। उसे लगा कि अब अमर बालक नहीं, वह आजाद पंछी है, जिसके अपने पंख और अपनी उड़ानें हैं।

वह सिहर उठी।

बाहर बरामदे में चौकीदार बैठा 'बिरहा' गा रहा था।

आज सोमा को पहली बार लगा—जीवन कितना सूना, रसहीन और निरर्थक है ?

फिर वह पलंग पर जाकर पड़ रही और बड़ी रात बीते अकेली सिसकती रही।

◇ ◇ ◇

सुबह उठी तो सोमा की आँखें सूजी हुई थीं। उसके तेजस्वी मुख की सदा उज्ज्वल रहने वाली अरुणाई आँसुओं में घुलकर फीकी पड़ रही थी। रोज़ बहुत तड़के सोकर उठते ही वह केश-विन्यास कर लेती थी, माथे पर बिन्दी और गालों पर हल्का-सा पौडर लगाकर नये उत्साह से नये दिन का अभिनन्दन करने को तैयार हो जाती थी। लेकिन आज उसकी आँखें गीली और केश रूखे थे। उसके पैर दो कदम चलने में लड़खड़ा जाते थे। हाथों में इतना बल भी नहीं था कि खुद प्याली उठाकर चाय पी ले। कुछ कहने को होंठ फड़फड़ाते थे लेकिन श्वासों में इतने प्राण नहीं रहे थे कि शब्दों को बाहर ला सकें।

अमर ने सोमा को इस निढाल हालत में पहली बार देखा था। एक बरस पहले वह सोमा को ऐसी उदास देखता तो अपने हज़ार काम छोड़ उसके पास जाता, उसके मन की व्यथा सुनता और जब तक उन आँखों में स्वच्छ हास्य की आभा न झलक आती। तब तक चैन न लेता।

लेकिन आज कलाकार अमर के मन में सोमा को देखकर केवल एक प्रेरणा मिली कि वह उदासी में डूबी सोमा की कलाकृति बनाये। आज सोमा उसके चित्र का विषय रह गयी थी।

और सचमुच ही अमर कूची-कागज लेकर चित्र बनाने बैठ गया।

सोमा अन्दर पलंग पर बैठी अपनी चिन्ता में डूबी थी। और उसके व्यक्तित्व से अनासक्त अमर बाहर बरामदे में परदे के पीछे बैठे उसे रेखाओं में बाँध रहा था। आज उसमें ऐसी अलहदगी भी न जाने कैसे आ गई थी!

चित्र की बाह्य रेखाएँ पूरी हो गई तो अमर को सूझा, सोमा को आश्वस्त करना उसका पहला काम था।

वह सोमा के पास पहुँचा।

दिल में तो यह था कि वह कहे : सोमा! आखिर तुम हो औरत ही, तुम्हारी तेजस्विता चेहरे की अरुणाई तक ही गहरी है। भीतर कायरता, स्वार्थ और संशय के बादल घिरे हैं। तुम्हें अपने पति-प्रेम पर नाज है। मगर अपने पति को किसी दूसरी स्त्री से दो बातें भी करती देख लीं तो डाह से जल गयी। वह प्रेम क्या जिसमें विश्वास नहीं। स्वयं तुम पति का ऐसा विश्वास चाहती हो कि वह तुम्हें सैकड़ों पुरुषों के बीच हँसते-खेलते काम करने दे और पति को एक स्त्री के साथ हँसते-खेलते देख लिया तो आसमान टूट पड़ा।

लेकिन प्रगट में कहा इतना ही :

"सोमा! तुम्हें मुझ पर अविश्वास है?"

सोमा चुप रही। केवल दो बड़े-बड़े आँसू उसकी आँखों से ढुलक पड़े।

कुछ देर बाद सारा साहस बटोरकर सोमा ने कहा : "मेरे सारे स्वप्न टूट गये।"

अमर ने पूछा : "कैसे स्वप्न!" मानो स्वप्न लेने का अधिकार केवल पुरुषों को होता है। स्त्रियों को नहीं।

सोमा ने अमर की बात का उत्तर न देकर स्वयं ही कहना जारी रखा :

"अमीर घर के कई प्रस्तावों को मेरे बाप ने ठुकरा दिया था केवल

इसलिये कि वे चरित्रवान दामाद चाहते थे।"

अमर : "तो मेरे चरित्र पर सन्देह है तुम्हें ?"

सोमा : "कोई ऐसे काम ही क्यों करे कि सन्देह हो जाये, मैं केवल यह चाहती हूँ कि तुम उस औरत से दूर रहो।"

अमर : "तुम उसीसे नहीं सभी स्त्रियों की छाया से मुझे दूर रखना चाहती हो। स्त्री मात्र से तुम्हारा द्वेष है। अपने सिवा तुम सब स्त्रियों को आचारहीन समझती हो क्या ?"

सोमा : "मैं जो समझती हूँ, वह जानकर तुम क्या करोगे ? तुमसे तो मैं इतना ही चाहती हूँ कि तुम उससे दूर रहो।"

"दूर रहने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन ऐसा वचन देना अन्याय है और ऐसी माँग करना तुम्हारा दुराग्रह है।"

"मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकते ?" सोमा ने थोड़ी नरमी के साथ कहा।

अमर का मन तो यह कहने को उबल रहा था कि : सोमा ! तुम्हारे लिये मैंने क्या नहीं किया। अपना घर छोड़ा, रोज़गार छोड़ा, लोगों के ताने सहे, अपमान सहा और अब भी सहता हूँ। अब मुझसे अन्तरात्मा के प्रति सच्चा रहने की निष्ठा भी छीनना चाहती हो, मैं अपने को धोखा दूँ, दूसरों पर झूठा आरोप लगाऊँ, यही चाहती हो अब ? नहीं, यह मुझसे न होगा। मगर उसने प्रगट में इतना ही कहा : "तुम्हें मुझपर विश्वास ही नहीं तो क्या हो सकता है ?" और वह उठकर चला गया। जल्दी-जल्दी कपड़े पहन, घर से बाहर निकल गया, चाय भी नहीं ली।

◇ ◇ ◇

दस बज गये मगर सोमा पलँग से नहीं उठी।

स्टूडियो से फोन आया। सोमा ने फिर उठने की कोशिश की, लेकिन हाथ नहीं उठे, पैर पंगु हो गये। हर समय चिड़िया की तरह चहक-फुदककर काम करने वाली सोमा के पंख कट गये थे।

उसी समय कुमार जब अपनी काटेज से निकलकर बम्बई के लिये रवाना हुआ तो उसने देखा सोमा की गाड़ी अभी गराज में ही खड़ी थी। नहीं तो प्रायः सोमा की गाड़ी सुबह ही स्टूडियों के लिये चली जाती थी।

कुमार अपनी गाड़ी खड़ी कर वहीं उतर गया।

जब से उसने एलिफेन्टा केव का भेद सोमा को बतलाया था तभी से वह किसी संकट की प्रतीक्षा कर रहा था। सोमा के ड्राइवर से उसे जब मालूम हुआ कि वह अभी तक स्टूडियो नहीं गयी तो वह समझ गया तीर निशाने पर लगा है। अब उसका मनोरथ पूरा होगा !

दो क्षण रुककर कुमार ने द्वार से झाँका। सोमा विचारों में खोई थी। उसके गोरे मुख पर दो-एक लटें बिखर आयी थीं किन्तु उनके लहराने से भी सोमा का ध्यान भंग नहीं होता था।

अक्षय अन्दर आया और सोमा की गहरी उदासी देखकर बोला :

"सोमा, तुम्हारी यह उदासी मुझसे नहीं देखी जाती। तुम अपने शरीर और स्वास्थ्य का सत्यानाश कर रही हो। मुझसे यह नहीं देखा जाता। मुझे कहने का ज्यादा अधिकार नहीं। नहीं तो मैं तुम्हें समझाता······

"है, सब अधिकार है कुमार तुम्हें।"

सोमा ने शायद पहली बार ही यह अधिकार दिया था।

"नहीं है, तभी न मैं तुमसे इस प्रकार प्रार्थनाएँ कर रहा हूँ कि

बाबा, अपने शरीर की भी कुछ सुध लो।"

"तुम क्या चाहते हो ?" सोमा ने आँसुओं से गीली और सूजी आँखों को उठाते हुए पूछा।

"चाहता बहुत कुछ हूँ सोमा। पर अभी इतना ही कि तुम वही सोमा बन जाओ। सरल और चंचल। घर में अपनी गोद में सितार लिये बजाने वाली सोमा को मैं देखना चाहता हूँ, पहले स्टूडियो में फिर घर में थकी-हारी परेशान सोमा को नहीं।"

सोमा सुन रही थी, अक्षय कह रहा था :

"ईश्वर ने तुम्हें ऐसे कठोर परिश्रम के लिये नहीं बनाया सोमा।"

सोमा के सामने पड़ी चाय ठंडी हो रही थी। उसे गिराकर नयी चाय ढालते हुए कुमार ने कहा :

"अरे राम ! तुमने चाय भी नहीं पी अभी तक। लो पी लो और तैयार हो जाओ।"

"मुझसे नहीं उठा जाता, मैं बहुत थकी हूँ कुमार," सोमा ने दबी जबान में कहा।

कुमार ने सोमा का हाथ पकड़ा। वह नहीं उठी, फिर दोनों हाथ पकड़े। तब भी वह नहीं उठी।

"अब न उठी तो मैं उठाकर···ले जाऊँगा··· ।"

सोमा ने ऊपर देखा।। कुमार में आज इतना साहस कैसे आ गया था ? वह कुमार को कायर और दब्बू मानती थी। उसे विश्वास था, कुमार ऐसी बात कभी नहीं कर सकता।

इसी विश्वास के आधार पर उसने शरारत से कह दिया : "देखूं कैसे उठाते हो ?"

सोमा को फ़िल्म में कई बार कइयों ने उठाया था। इसलिये उसने इस चेष्टा में विस्फोटक प्रभाव की कल्पना भी नहीं की कि किसीके

बाहुओं में आकर स्त्री उसे सर्वतः समर्पित कर देती है।

कुमार शरारत पर तुला हुआ था। उसने कहा : "सचमुच उठा लूँगा।"

"बचपन में भी ऐसी ही शेखी बघारा करते थे तुम। मैं सब जानती हूँ।"

"बचपन में तो तुम ऐसी शेरनी-सी थीं और अब बिल्ली बनी बैठी हो। वह भी भीगी-सी।"

"तुम कहाँ के शेर हो, देखूँ।"

"तो यह लो।" कहकर कुमार ने सचमुच सोमा को उठा लिया।

सोमा ने अभी ढीला-ढाला-सा स्लीपिंग सूट पहना हुआ था। कुमार की बाहों में उठकर उसकी सुडौल टांगें घुटनों सक नंगी हो गयीं। उसके छोटे-से फ्राक में सोमा की गोरी-गोरी बाहें न समा सकीं। कुमार की अंगुलियाँ उसकी कमर में गुदगुदी कर रही थीं।

सोमा कुछ न समझ सकी। यह अचानक ही क्या हो गया था। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी पागलों की तरह, और आपस में कल्लोल करते उन बच्चों की तरह जो एक दूसरे को गुदगुदाकर हँसने-हँसाने का खेल कर रहे हों।

लेकिन दूसरे ही क्षण उसे कुछ याद आया और वह उछलकर पलंग पर जा गिरी और फिर रोने लगी।

रोने का कारण उसे भी मालूम न था। लेकिन उसका रोम-रोम पुकार रहा था : "सोमा ! तू अक्षय की है, अक्षय तेरा है। तुझे इसीके अंक में विश्राम मिलेगा।" किन्तु अन्दर से उठती इसी पुकार को दबाने में, उसे अनसुना करने के लिये सोमा अपने से लड़ाई लड़ रही थी और इसी युद्ध में अपने को कुछ क्षणों के लिये पराजिता-सी होती अनुभव कर उसका अभिमान रो रहा था।

लेकिन सोमा पराजित नहीं होगी। वह अपने को सँभाल लेगी।

वह फिर स्वस्थ होकर अपने काम करेगी। इन्हीं विचारों के भँवर में वह गोते लगा रही थी कि टेलिफोन की घंटी बजी।

अक्षय ने टेलिफोन उठाया।

अंधेरी के निशात स्टूडियो का फोन था : "सोमा का शूटिंग दस बजे से है, उसे कहिये जल्दी आ जाये, हम देर से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

अक्षय ने सोमा से बिना पूछे ही उत्तर दिया : "सोमा की तबियत ठीक नहीं। वह आज नहीं आयेगी।"

सोमा ने प्रतिवाद किया :

"मेरी तबियत ठीक है, मैं जाऊँगी, कह दो थोड़ी देर में आती हूँ।"

अक्षय ने टेलिफोन रख दिया।

टेलिफोन की घंटी फिर बजी। सोमा ने चाहा वह उठाये लेकिन अक्षय ने लपककर उठा लिया।

"कह तो दिया कि उसकी तबियत ठीक नहीं, डाक्टर के पास गयी है, दो-चार दिन शूटिंग पर नहीं आ सकेगी।"

सोमा ने नाराज होते हुए कहा : "यह क्या करते हो ? मेरा शूटिंग है, मैं काम पर जाऊँगी, उन्हें फोन कर दो, मैं आ रही हूँ।"

अक्षय ने फोन रख दिया और कहने लगा :

"सोमा ! यह सब तो होता ही रहेगा, तुम्हारा स्वास्थ्य पहले है, काम पीछे; चलो सैर करने, तुम बहुत परेशान मालूम होती हो।"

सोमा ने कहा : "नहीं मैं नहीं जाऊँगी, तुम जाओ।"

अक्षय ने कहा : "शूटिंग तो अब स्थगित हो ही गया है। चलो विहार लेक की सैर कर आयें। तुम्हारी तबियत बहल जायेगी।"

अक्षय अपनी गाड़ी लाया था। उसने सोमा से कहा : "लो तुम्हीं चलाओ।"

"नहीं", सोमा ने ड्राइवर के पास वाली सीट पर बैठते हुए कहा : "तुम्हीं चलाओ।"

"क्यों, तुम तो मुझसे अच्छी चलाती हो।"

"गाड़ी तुम्हारी है।"

"जो मेरी है वह तुम्हारी भी क्यों नहीं ?"

"किस अधिकार से ?" सोमा ने पूछा।

"जो एक बरस पहले था उसीसे।"

"उसका पटाक्षेप हो चुका। उसका जिक्र मत करो नहीं तो मैं गाड़ी से उतर जाऊँगी।"

अक्षय ने गाड़ी चला दी। आज वह बड़ी तेजी से पहाड़ी के ऊपर गाड़ी ले जा रहा था।

सोमा ने टिप्पणी की : "ऐसे दिलेर कब से हो गये ? पिता जी तेज चलाने से नाराज नहीं होते क्या ?"

अक्षय समझ गया। विवाह से पूर्व जब सोमा तेज गाड़ी चलाती थी तो अक्षय यह कहकर टोक देता था, "पिताजी नाराज होंगे।"

अक्षय ने कहा : "अब मैं खुद कमाता हूँ, पिता जी पर आश्रित नहीं।"

सोमा अक्षय के साहसी होने का कारण समझ गयी। अचानक उसके मुख से निकल गया : "दो वर्ष पहले तुम ऐसे बन जाते तो······ खैर जाने दो, जो हो गया ठीक हो गया।"

"अब कुछ नहीं हो सकता ?"

अक्षय ने साहस करके पूछा और झील की ओर इशारा करते हुए बोला : "कुछ दिन भी तुम प्रतीक्षा करतीं तो सब ठीक हो जाता। उन दिनों मैं पिता जी की बात नहीं टाल सकता था, मैं कायर था, सचमुच कायर था।"

सोमा और अक्षय को शाम को घर लौटते चार बज गये।

रोज अमर शाम के सात बजे तक घर आता था, कभी-कभी तो आठ भी बज जाते थे। लेकिन आज वह एक बजे ही घर वापस आ गया था।

सोमा को घर पर उदास छोड़कर कलाकेन्द्र जाने के बाद उसका मन काम में नहीं लगा। वह जल्दी ही घर आ गया।

सोमा अक्षय की गाड़ी से जब पामकोर्ट के द्वार पर उतरी तो अमर बरामदे में ही खड़ा था।

अक्षय सोमा को उतारकर फिर गाड़ी पर चढ़ने लगा तो अमर ने पुकारा :

"अक्षय बाबू, जल्दी क्या है, आइये।"

अक्षय चौंक गया। उस समय वहाँ अमर की उपस्थिति आशंकित नहीं थी।

"फिर आऊँगा अमर साहब ! अभी तो माफ करो" कहकर अक्षय ने गाड़ी का बटन दबाया।

मगर गाड़ी स्टार्ट होने से पहले ही अमर गाड़ी के पास पहुँच गया था। उसके आग्रह पर अक्षय को आना ही पड़ा।

"चाय पीने का समय है, अब चाय पीकर ही जाना।" अमर ने कहा।

"हम विहार लेक गये थे।" सोमा ने शंकित मन से कहा।

चाय पीना शुरू हो गया था। अक्षय अमर की ओर से अपशब्द नहीं तो चुभते कटाक्ष की तो आशंका कर ही रहा था।

लेकिन उसका भय निर्मूल निकला जब अमर ने सोमा को कुछ न कहकर अक्षय को सम्बोधन करते हुए निश्छल मन से कहा : "आपने सोमा को आज विहार लेक की सैर कराकर मुझपर बड़ा ही उपकार किया अक्षय जी, मैं सचमुच कृतज्ञ हूँ।"

◇ ◇ ◇

रात भर सोमा से कोई बात नहीं हुई। सोमा अमर की इस कल्पनातीत उदारता का कुछ अर्थ न लगा सकी। इसमें कितना व्यंग था, कितनी यथार्थता थी, इसका कोई अनुमान उसकी छोटी-सी कल्पना में नहीं आया। अक्षय तो बहुत ही लज्जित-सा अनुभव करते हुए चुपचाप अपने घर की ओर चला गया था।

दो दिन इसी मौन में निकल गये। न सोमा बोली, न अमर को कुछ कहने का साहस हुआ। नौकर-चाकर सब काम कर देते थे और दोनों, सोमा-अमर सुबह अपने-अपने काम पर जाकर शाम को घर वापस आ जाते और यह अटूट मौन जुहू-तट की रात्रि की निस्तब्धता को और भी डरावनी बना देता था।

सोमा को आधी-आधी रात तक नीरव रात्रि की उस शून्यता में जब समुद्र के गम्भीर घोष का अनवरत स्वर सुनायी देता रहता तो उसे लगता : यह समुद्र किसी दिन सारी पृथ्वी को उदरसात कर लेगा।

अखंड मौन की उस विभीषिका से वह इतना डर जाती कि चौंककर अमर के पलंग तक जाती, मगर उसी समय उसे कुछ ध्यान आता और वह उलटे पैर अपने सूने पलग पर लौट आती।

उसे याद आ जाता, अमर ने सविता से न मिलने का वचन नहीं दिया है। वह कल्पना करती, अमर सविता से प्रेम करने लगा है। वह अब मेरी उपेक्षा कर रहा है। तभी तो वह चुप है और तभी उसने अक्षय के साथ मुझे देखकर भी कुछ नहीं कहा था।

आखिर कब तक यह मौन-विग्रह चलता ?

पाँचवें दिन सोमा ने निश्चय कर लिया 'कि आज कुछ भी हो वह दो-टूक फैसला करके रहेगी।

अमर शाम को घर आया तो सोमा ने बरामदे में ही टोका। उसके हाथ में एक स्केच-कापी थी। सोमा ने कहा :

"जरा बैठ जाइये।"

अमर पास पड़ी बेंत की कुर्सी पर बैठ गया। सोमा ने हाथ की कापी की ओर इशारा करते हुए पूछा :

"यह क्या है ?"

"तुम्हारे काम की कोई चीज नहीं।"

"मेरे काम की तो आपके पास कोई भी चीज न होगी, यह तो मैं जानती ही हूँ···फिर भी दिखाइये।"

अमर ने स्केच-बुक आगे कर दी।

सोमा ने पन्ने पलटे और स्वर में गहरी नफ़रत भरते हुए कहा :

"मेरा ख्याल था आप चरित्रवान् हैं।"

अमर चुप था। सोमा ने स्केच-बुक में खिंचे एक अल्प वसना नारी के चित्र की ओर संकेत करके कहा :

"तो कलाकेन्द्र में यह लीला होती है ?"

अमर के ओठों पर व्यंगपूर्ण हँसी थी। सोमा ने फिर अपने शब्दों में विष घोलते हुए कहा :

"मैं अब सब समझ गयी।"

"क्या समझ गयीं ?"

"यही कि आप सविता का साथ क्यों नहीं छोड़ सकते। कला के परदे में जो लीला होती है उसका प्रमाण यह स्केच-बुक है।"

अमर को दिल ही दिल में सोमा की मूर्खता पर दु:ख हो रहा था, लेकिन अपनी स्थिति की विचित्रता पर उसे हँसी भी आ रही थी।··· मुक्त भाव से हँसते हुए उसने कहा :

"कला में शरीर के आवृत या निरावृत होने का महत्व नहीं होता। उसमें दैहिक चेष्टा नहीं भावना देखी जाती है।"

सोमा की बड़ी-बड़ी आँखें गहरी घृणा से छोटी हो गयीं। उसने उनसे शर-बेध करते हुए कहा : "अमर बाबू अपने को धोखा क्यों देते हो ? सेक्स की तुम्हारी भूख इन चित्रों में साफ झलक रही है।"

अमर ने उन प्रहारों को बड़ी शान्ति से सह लिया, और पास की तिपाई के निचले दराज में पड़े एक एल्बम को खोलकर उसने सोमा के आगे कर दिया।

"इन फोटुओं में भी क्या वही झलकता है सोमा ?"

यह एल्बम कसौटी फिल्म के स्टिल्स का संग्रह था। जिस चित्र को अमर ने सोमा के सामने खोला था उसमें चित्र की हीरोइन सोमा हीरो के कंधों पर अपना सिर डाले खड़ी थी और बड़ी ही प्रणय-कातर दृष्टि से हीरो को चुम्बन के लिये आग्रह कर रही थी। उसकी बाहें हीरो के गले में झूल रही थीं।

"ये तो फिल्म में काम के चित्र हैं, वास्तविक नहीं।"

अमर : "तो वे भी कला के अभ्यास के चित्र हैं, वास्तविक नहीं।"

सोमा ने स्केच-बुक फाड़ने के लिये दोनों जिल्दों को पकड़कर खींचा लेकिन कुछ सोचकर फाड़ा नहीं और बोली :

"किन्तु यह तो वास्तविक है। सविता ने तुम्हें मूर्ख बना लिया है।"

"कौन किसे मूर्ख बनाता है और कौन बनाते-बनाते खुद बनता है, कौन जाने ?"

"कुछ भी हो, मैं तुम्हारा सविता से मिलना सहन नहीं करूँगी।"

"सहन न करने से कष्ट अधिक हो जाया करता है।" अमर ने हल्केपन से एक बात कह दी।

"मैं इस कष्ट को जड़ से नष्ट कर दूँगी, तुम सविता से नहीं मिलोगे ! वचन दो।"

अमर जरा गम्भीर हो गया। बोला :

"सविता से मैं मिलूं न मिलूं सोचना मेरा काम है; मुझे स्वतन्त्र रूप से निश्चय करने दो।"

"ऐसी स्वतन्त्रता चाहते थे तो क्वारे रहते।" सोमा ने कहा।

"अब भी तो क्वारा ही हूँ।" अमर ने सोमा पर कटाक्ष करते हुए कहा।

"तुम्हीं अकेले क्वारे नहीं हो।"

"मगर निश्चय तो तुम्हारा ही था, मेरा नहीं।"

"कुछ भी हो, मैं हाँ-ना में उत्तर चाहती हूँ, तुम सविता से न मिलने का वचन देते हो या नहीं ?"

"दबाव मत डालो सोमा, मैं युक्ति मानता हूँ दबाव नहीं। दबाव ही मानता होता तो सारे समाज का विरोध सहकर भी तुम्हें फिल्म में काम करने की स्वीकृति न देता। युक्ति-संगत बात के आगे ही मैं सिर झुकाता हूँ, अनुचित दबाव के आगे नहीं। यदि तुम इतनी-सी नहीं समझीं तो कुछ न समझीं।" कहकर अमर उठ गया।

सोमा निष्प्रभ-सी बैठी रह गयी।

कोई उसकी उपेक्षा कर जाय, यह सोमा को सह्य नहीं था। और अब तो वह हजारों रुपये कमा रही थी ! उसके सामने अमर की कोई हस्ती ही नहीं थी। घर के खर्चे लायक पैसे भी वह नहीं बना रहा था। घर का सब ठाट-बाट, मोटर गाड़ी, रेडियो, फर्नीचर सोमा की आय से आये थे। और फिर सोमा हिरोइन थी, लाखों की मालिक भी। स्टूडियो में उसके आगे-पीछे लोग हाथ जोड़े घूमते थे। वह जिस बाजार से गुजर जाती सैकड़ों लोग उसकी एक झलक पाने को आतुर रहते थे। उससे हाथ मिलाने को बड़े-बड़े अफसर तरसते थे। अखबारों में उसके चित्र रंगीन पृष्ठों पर छपते थे।

ऐसी यशस्विनी सोमा को उसका बेरोज़गार पति अमर उपेक्षा की दृष्टि से देखे यह सोमा को कब सह्य हो सकता था ?

मगर इसका उपाय क्या हो ?

उपाय सोचते-सोचते सारी रात बीत गई। एक पल भी उसे चैन न मिला।

रात को उठ-उठकर फिर से अमर को मजबूर करने के इरादे से सोमा उसके पलंग के पास जाती लेकिन उसे गहरी नींद सोया देख लौट आती।

उसे आश्चर्य था, ऐसी हालत में अमर को नींद कैसे आ गयी ? उसे मेरी इतनी भी चिन्ता नहीं ! उसकी नींद से भी उसे अपने तिरस्कार की गंध आती। उसे लगता कि उसका घोर अपमान करने के लिये ही वह सो रहा था।

अमर की प्रत्येक चेष्टा में सोमा को अपने अपमान की गंध आने लगी।

उसके उदार व्यवहार में कायरता झलकने लगी। उसकी कला-प्रियता और सृजनात्मकता में सोमा को लाक्षणिक अतृप्ति, काम-वासना और रुचि-विपर्यय का आभास मिलने लगा।

अमर की वेश-भूषा, उसकी शिथिल दीर्घसूत्री कार्य-नीति से वह पहले ही चिढी हुई थी। केवल उसके सहज विनय और उदारतापूर्ण दृष्टिकोण पर ही वह मुग्ध थी। लेकिन अब सोमा ने उसके विनय को कायरता का रूप दे दिया था। उसके गुण भी अब अवगुण के रूप में प्रगट हो रहे थे।

अमर में उसे एक ही गुण दिखायी दिया था कि वह सोमा का मान करता था। उसके साथ रहते हुए उसे अवहेलना का डर नहीं था। उससे भी उपेक्षा पाकर सोमा को अपना जीवन घटाटोप अंधकार से आच्छादित होता प्रतीत हुआ।

इस अंधकार में प्रकाश की कोई रेखा नज़र आती थी तो अक्षय में ही। रेखा ही क्यों, अक्षय तो सोमा के लिये स्वयं दीपशिखा बन जलने की प्रतीक्षा कर रहा था।

◇ ◇ ◇

पहले सोमा और अमर हर सुबह समुद्र-तट पर सैर करने जाते थे। अक्षय सोमा को अमर के साथ जाता देखकर मन ही मन अमर के स्थान पर अपनी स्थापना करके कल्पना-लोक में डूब जाता था।

कुछ दिन से वह देख रहा था, दोनों का आना बन्द हो गया था और एक दिन सोमा अकेली ही निर्जन तट पर घूमने चली। अक्षय की काटेज मार्ग में ही थी। वह भी साथ चल दिया।

समुद्र-तट पर उस समय दूर तक कोई व्यक्ति नहीं था। समुद्र का पानी तट के बालू को गीला कर वापस उतर रहा था। समुद्र के गंभीर घोष के अतिरिक्त किसी का स्वर सुनायी नहीं दे रहा था। हवा भी थमी हुई थी। मछुए भी अपने जाल में फँसी मछलियों को इक्ट्ठा करने नहीं आये थे।

अक्षय ने सोमा का हाथ अपने हाथों में ले लिया। सोमा ने अक्षय के इस साहस पर रोष प्रगट नही किया।

उसे लगा जैसे उसके निष्प्राण शरीर में नया रक्त आ गया हो। चित्त में थोड़ी सरसराहट हुई, कँपकँपी हुई। लेकिन इस कंपन ने सोयी नसों को चैतन्य करने में सहायता दी।

उसकी मुरझाई हुई आँखों के पलक फिर से पंख फड़फड़ाने लगे। उनमें स्पन्दन हुआ। उसके बुझे होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट जाग उठी। ओठ खुले नहीं, हँसी बाहर न आयी लेकिन ओठों के छोर फड़फड़ाये।

दोनों हाथ में हाथ डाले दूर तक चलते गये, यहाँ तक कि वरसोवा की खाड़ी आ गयी। आगे पानी गहरा था। नहीं तो शायद दोनों के पैर रुकते ही नहीं। वहाँ एक सूखी लकड़ी का तना जमीन पर गड़ा था। उस पर बैठकर दोनों ने पीछे की ओर मुख मोड़ा।

अक्षय ने कहा : "देखो सोमा ! बालू पर केवल मेरे तुम्हारे पद-चिह्न

जहाँ तक दृष्टि जाती है, अंकित हुए हैं। इन दो के अतिरिक्त उस पर कोई चिह्न नहीं।"

अक्षय का आशय स्पष्ट था। सोमा भी समझ गयी।

सोमा ने देखा और हँस दी। उस हँसी में बीते समय को भुला देने की प्रेरणा थी जो उसके इन शब्दों में प्रगट हो गयी :

"अपने समय पर पानी चढ़ेगा और इन चिह्नों को निःशेष कर देगा। समय का प्रवाह अपना निर्दिष्ट कार्य करता ही है, वह किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता। और किसीकी याद को बनाये नहीं रखता।"

इसके बाद सोमा सूखी बालू पर ज़रा किनारे हटकर बैठने को मुड़ी।

"बहुत थकी-सी लगती हो आज ?" अक्षय ने पूछा।

सोमा ने रेत पर बैठते हुए कहा :

"हाँ, आजकल बहुत थक जाती हूँ।"

इतने में बूँदाबाँदी शुरू हो गयी। अमर ने अपना छाता खोला। एक छाते के अन्दर दोनों देर तक बैठे रहे। बरसात जोरों पर आ गयी। आधा घंटा दोनों को वहीं रुकना पड़ा।

इधर अमर ने जब देखा कि सोमा अभी तक नहीं लौटी। शायद बरसात में कहीं भीग रही हो, तो वह बेचैन हो गया।

बरसात अब भी मूसलाधार पड़ रही थी। तट पर दूर तक कोई नजर नहीं आ रहा था। बालू पर केवल दो व्यक्तियों के पद-चिह्न थे। उनमें से एक सोमा का था, यह पहचानने में अमर को देर नहीं लगी। वह कितनी ही बार सोमा के साथ समुद्र-तट की सैर को गया था। कई बार दोनों ने वहाँ दौड़ने का मुकाबला किया था, दूर तक कूदने की शर्तें बाँधी थीं। उन समयों पर अमर ने सोमा के पद-चिह्नों को खूब पहचान लिया था।

लेकिन उनके साथ दूर तक चली गई दूसरी पद-पंक्ति किसकी थी ? उसे देखकर अमर को वैसी ही जिज्ञासा हो गयी जैसी राबिन्सन क्रूसो को एक दिन निर्जन तट पर अचानक ही एक पद-चिह्न देखकर हुई थी।

वह उस युगल पद-पंक्ति के पीछे-पीछे चल दिया। बरसात ने उन चिह्नों को कहीं-कहीं हल्का ज़रूर कर दिया था लेकिन अभी तक वे इतने गहरे अवश्य थे कि उन्हें देखकर जाने वालों का अनुसरण किया जा सके।

बहुत दूर, बाम्बे होटल से भी कुछ दूर आगे जाकर उसने देखा कि तट के एक छोटे-से झाड़ के नीचे कोई छतरी वाला बैठा है। दूर से वहाँ दो नहीं केवल एक ही दिखायी देता था।

कुछ दूर वह उधर ही बढ़ा, तब तक छतरी उठ खड़ी हुई थी, और उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस छतरी के साथ एक नहीं, दो व्यक्ति उसकी ओर बढ़ रहे थे।

उन्हें पहचानने में देर नहीं हुई।

अक्षय कुछ डरा हुआ था। इसीलिये वह पीछे-पीछे आ रहा था। सोमा तेज़ी से आगे आ रही थी। अक्षय को पीछे देख सोमा ने भी कदम धीमे रखने शुरू कर दिये।

अमर तेज़ी से उनकी ओर बढ़ रहा था।

वह पास पहुँचा तो सोमा कुछ नहीं बोली। अमर ने छाता देते हुए कहा :

"मैं समझा तुम अकेली हो !"

सोमा चुप थी।

अमर ने फिर ज़रा अटककर बड़ी विनय के साथ कहा : "मेरा इरादा तुम्हारा पीछा करना नहीं था,···माफ़ करना।"

अक्षय की ओर मुख कर उसने बड़े सहज भाव से कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा : "अच्छा हुआ तुम सोमा के साथ थे, तुम न होते तो

बिल्कुल भीग जाती। ग्राजकल वैसे भी इसकी तबियत ठीक नहीं···

अक्षय को डर था अमर यदि छाता लेकर उस पर आक्रमण नहीं कर देगा तो कम से कम चुभते कटाक्षों से उन्हें लज्जित तो करेगा ही। लेकिन अमर ने एक क्षण के लिये भी रोष प्रगट नहीं किया। बल्कि उसका उपकार भी माना।

अमर का यह व्यवहार अक्षय के लिये सर्वथा रहस्यपूर्ण था। वह इसका कुछ भी अर्थ नहीं लगा सका।

सोमा भी असमंजस में थी। उसकी सहिष्णुता और उदारता के लिये शायद कृतज्ञ भी होती यदि उसे तत्क्षण यह ध्यान न आ जाता कि अमर ने अभी तक सविता से न मिलने का वचन नहीं दिया था।

जब तक वह वचन न देगा तब तक सोमा ने अमर से एक भी बात न करने का निश्चय कर लिया था। इसलिये वह चुप ही रही। बल्कि उसके अयाचित उपकार की उसने पैर का अंगूठा रेत में गाड़कर रेत उछालते हुए अवज्ञा का संकेत भी दिया।

समुद्र-तट से थोड़ी दूर पर अक्षय की सनसेट काटेज थी और उससे जरा और आगे बढ़कर बायीं ओर सोमा का बंगला 'पामकोर्ट' था।

सोमा को यही संतोष था कि पामकोर्ट सनसेट से बड़ा था। अक्षय अब यह दावा नहीं कर सकता था कि वह बड़े घर में रहता है। सजावट में वह सोमा के बंगले से कम नहीं था। मगर विस्तार में तो वह कम था ही।

अक्षय को सनसेट में छोड़कर अमर और सोमा अपने बंगले में आ गये। आपस में एक शब्द भी न बोले।

◇ ◇ ◇

अमर अपने कमरे में चला गया। उसका कमरा बँगले के एक कोने

में बिल्कुल अलग था । जब से सोमा ने यह बँगला लिया था अमर ने अपने को इस कमरे में समेट लिया था ।

इस कमरे में साधारण बनावट का एक पलंग, लकड़ी की एक अलमारी और एक छोटी-सी तिपाई यही फर्नीचर के रूप में थे । अमर ने इस कमरे का नाम भी बँगले के नाम पामकोर्ट से अलग 'कला-निकेत' रखा हुआ था ।

तिपाई पर गुलदस्ते की जगह एक गोल पत्थर था, जिसे अमर ने बचपन से साथ रखा था । यह पत्थर वह १५ वर्ष पूर्व ऋषिकेश के गंगा-तट से लाया था ।

इस पाषाण-खंड को वह पवित्रतम वस्तुओं का प्रतीक मानता था । अनगिनत वर्षों तक गंगा के पावन जल से स्नात यह पाषाण-खंड किसी भी मन्दिर के भगवान से कम पवित्र नहीं था ।

निकेत की दीवारों पर अमर के कई पूरे-अधूरे कलात्मक आवरणों में आबद्ध सुसज्जित चित्र टँगे थे । मेज़ पर रंगों की ट्यूबें पड़ी थीं । फ़र्श पर कोई कालीन नहीं था केवल चटाई बिछी थी ।

एक पार्श्व में तिपाई पर भगवती सरस्वती की चन्दन मूर्ति रखी थी । अमर प्रतिदिन प्रातः-सायं उसे आराधना-पुष्प अर्पित करता था । सरस्वती-अर्चना के बाद ही वह दैनिक कार्य प्रारम्भ करता था ।

यह अर्चना वह अकेला ही करता था लेकिन सोमा के कानों तक सरस्वती-स्तवन की ध्वनि अवश्य पहुँचती थी और वह प्रायः अमर के निसर्ग मधुर कंठ से गाये पूजा-गीतों को अपनी बैठक में ही बैठी मुग्ध भाव से सुना करती थी ।

रात को सोने से और सुबह शैया-त्याग से पूर्व उन भावप्रवण गीतों का सुनना सोमा के लिये अनिवार्य हो गया ।

कभी-कभी वह स्वयं भी अमर के साथ पूजा-पाठ में सम्मिलित हो जाती थी । किन्तु आजकल उसे अवकाश नहीं था ।

दूसरे चित्र 'दीपमाला' का शूटिंग अनवरत चल रहा था। कम्पनी वाले इस चित्र को दिवाली पर अवश्य प्रदर्शित करना चाहते थे।

सोमा व्यस्त थी तो अमर भी कम व्यस्त नहीं था। 'दीपमाला' से आठ दिन पूर्व ही उसने 'जहाँगीर आर्टगैलरी' में चित्रों का प्रदर्शन करना था। तब तक वह ५० नये चित्र बना लेना चाहता था। वह घर पर भी चित्र बनाता था और कलाकेन्द्र में भी।

तभी वह सोमा के साथ स्टूडियो नहीं जा पाता था। और अब तो जब तक सोमा को उससे यह वचन न मिल जाता कि वह सविता का मुख भी न देखेगा, सोमा उससे एक भी बात न करने की शपथ ले चुकी थी।

इसीलिये कम्पनी जाने से पहले उसने अक्षय को फोन किया कि वह दफ्तर जाते हुए उसे सेन्ट्रल स्टूडियो छोड़ता जाये।

अक्षय कुछ संकोच में पड़ गया। सोमा के लिये उसके हृदय में प्रेम था, उसके प्रति पूरी सहानुभूति थी किन्तु अभी वह उसे एकान्त के रहस्य में ही छिपाकर रखना चाहता था। किन्तु सोमा को साथ ले जाने से इन्कार भी नहीं कर सकता था। इसलिये वह शहर के बाहर से ही गाड़ी ले गया और स्टूडियो आने से पहले ही यह कहकर उतर गया कि उसे किसीसे मिलने जाना है। ड्राइवर ने सोमा को स्टूडियो में छोड़ा।

शूटिंग में फिर देर हो गयी थी। आठ बज चुके थे।

अक्षय ने शहर से लौटते हुए सोमा को स्टूडिओ से साथ ले लिया।

सोमा थकी हुई थी। अक्षय की मुलायम गद्दों वाली सीट पर आधी लेटी-सी बैठ गयी। उसके लम्बे लहरदार केशों से भरा सिर गद्दियों की दीवार के साथ पीछे झुका हुआ था।

गाड़ी जब सेन्ट्रल से निकलकर नयी वर्ली की दरगाह के सामने आयी तो समुद्र की ठंडी हवा ने सोमा के माथे को सहलाया। उसकी आँखें भारी हो गयीं। उसके सिर ने झुककर अक्षय के कन्धों का सहारा लिया।

बहुत दिनों से उसने अपने व्यस्त जीवन में विश्रान्ति नहीं पायी थी। हर समय मन में नयी-नयी महत्वाकांक्षाएँ और नये-नये संदेह उठकर अशान्त बना देते थे। सविता के प्रति अमर के रुख ने तो उसका सम्पूर्ण आधार ही नष्ट कर दिया था। उसे लगता था, वह ऐसा धरातल खोज रही है जिसके अन्धकार का अन्त नहीं है, जिसकी गहराई रोज गहरी होती जा रही है।

आज अक्षय के कन्धों पर विश्राम पाकर उसे कुछ क्षण को पूर्ण शान्ति मिली।

चारों ओर अन्धेरा था। रास्ते की बत्तियाँ सोमा की निद्रालु आँखों को कभी-कभी चौंका अवश्य देती थीं मगर उसने दस मील के इस रास्ते में एक बार भी आँख नहीं खोली।

उन कन्धों का सहारा पाकर और समुद्री पवन की थपकियों से निद्रालु होकर वह कुछ देर के लिये सब भूल गयी थी। वह सब संघर्ष भूल गयी।

इसीलिये जब जुहू आया, पामकोर्ट के सामने अक्षय ने गाड़ी रोकी तो भी सोमा की आँख न खुली।

दो मिनट गाड़ी खड़ी रही। रात के दस बजे थे। चारों ओर सुनसान था। अक्षय की गाड़ी में सोमा अपने को भूली, दुनिया को भूली, अकेली सोई हुई थी।

यही वह सोमा थी, जिसे पाने के लिये अक्षय ने तपस्या की थी और जिसे न पाकर उसका सारा जीवन विक्षिप्त हो गया था।

आज पिता के डर से, समाज के भय से वह सोमा को अपना नहीं बना सका था लेकिन आज भी वह उसके रोम-रोम में रमी हुई थी।

उसकी शिथिल वेणी के केश समुद्र की हवा में लहरा रहे थे। उसका वक्षांचल हवा में उड़कर नीचे जा पड़ा था और अभी तक अछूते उभरे उरोज कौमार्य का संकेत कर रहे थे।

अक्षय ने एक क्षण विचारा : पामकोर्ट की ओर देखा। वहाँ अभी अन्धेरा था, केवल रसोई के कमरे की बत्ती जल रही थी। अमर का कमरा भी बन्द था।

कुछ देर ठिठक कर उसने गाड़ी चला दी। कुछ दूरी पर ही उसका काटेज था। उस काटेज में भी अन्धेरा था।

अक्षय ने द्वार खोला। गाड़ी को पोर्च में लगा दिया। कई बार उसके मन में आया वह सोमा के गालों को चूम ले। बहुत पास तक उसके अधर झुके भी लेकिन साहस न हुआ।

सोमा सोई हुई थी, कई रातों से उसे नींद नहीं आयी थी। सबकी कसर आज ही निकल रही थी।

अक्षय ने पुकारा, उसकी आँख खुली। हाथों का सहारा देकर अक्षय उसे अपने कमरे में ले आया। सोमा ने समझा वह अपने ही कमरे में जा रही है।

कुछ शक हुआ सो उसने पूछा :

"यह कहाँ ले आये ?"

"मेरा कमरा है सोमा ! तुम जरा आराम कर लो, तुम्हारा मकान बन्द था।"

'मकान बन्द था।' सुनकर सोमा को याद आ गया कि अमर अभी तक घर लौटकर नहीं आया। उसकी कल्पना दौड़ने लगी : "अमर सविता के साथ विलास कर रहा होगा। सविता ने उस पर जादू कर दिया है। कला के नाम पर उसने अनियंत्रित विलास का लाइसेन्स ले लिया है।"

इस कल्पना ने उसे और भी थका दिया।

उसके सामने अक्षय खड़ा था।

उसने फिर ध्यान से देखा। उसे अक्षय के व्यक्तित्व में एक चुम्बकीय

ग्राकर्षरण प्रतीत हुग्रा। वह ग्राकर्षरण विवाह के बाद भी कम नहीं हुग्रा था। ग्रपने मन के एक पार्श्व में उसने उस विचित्र व्यक्ति के लिये सुरक्षित स्थान दे रखा था।

बचपन में ही इस ग्राकर्षरण ने सोमा पर ग्रधिकार कर लिया था। उसकी उद्दाम चेष्टाग्रों ग्रौर प्रेम के ग्रनियंत्रित ग्रावेश ने सोमा को कई बार परास्त किया था।

कठिनाई यही थी कि वह प्रचंड ज्वाला एक क्षरण में बुझ जाती थी। ग्रक्षय का ग्रन्तर्मन समाज के प्रति विद्रोही नहीं हो पाता था। किन्तु व्यक्तित्व के एकान्त में ग्रक्षय ने सोमा को ग्रपना सब कुछ ग्रर्पित किया था, यह बात सोमा से छिपी नहीं थी।

सोमा ने ग्रमर से विवाह ग्रवश्य किया था ग्रौर ग्रपने व्यावहारिक जीवन में वह ग्रमर को जीवन-साथी भी मानती थी किन्तु ग्रक्षय के सामने ग्राते ही उसके रोम-रोम में एक प्यास जाग जाती थी ग्रौर वह बार-बार ग्रक्षय से सुनना चाहती थी कि 'मैं तुझे प्यार करता हूँ सोमा! तुम्हारे सिवा किसीसे नहीं। जितना बचपन में करता था उससे भी ग्रधिक।'

सोमा ने ग्राज उस ग्रकेले कमरे में रात के दस बजे ग्रक्षय के सामने बैठकर यही ग्रनुभव किया।

ग्रक्षय जब सोफे पर उसके पास बैठने लगा तो वह थोडा-सा पीछे खिसक गयी किंतु उसका जोर से धड़कता हुग्रा दिल यही चाह रहा था कि ग्रक्षय उसके मुख को ग्रपने दोनों हाथों की ग्रंजलि में भरकर ऊपर उठा ले ग्रौर उसकी ग्राँखों में ग्राँखें डालकर कहे : "सोमा, मेरी सोमा··।"

ग्रक्षय ने ग्रपने हाथ उसके कंधे पर रखे तो वह चौंककर खड़ी हो गयी। उसके मुख से निकला : "ग्रक्षय, मुझे घर पहुँचा दो।"

किंतु उसके मन के एक कोने से यही ग्रावाज निकल रही थी, "ग्रक्षय! मैं बहुत थकी हुई हूँ। मेरे पैर काँप रहे हैं। मुझे ग्रपनी भुजाग्रों में कसकर बाँध लो। मेरे ग्रनिश्चयों का ग्रन्त कर दो। मुझे

मत छोड़ो। मैं कितना ही रोऊँ, चिल्लाऊँ मुझे अपने से जुदा मत करो। मुझे इतना कसकर अपने से बाँधो कि मैं कभी अलग नहीं हो सकूँ। मेरे साँसों का तूफ़ान देख रहे हो और चुप हो। मेरे दिल की धड़कन सुन रहे हो? इतने प्रबल आलिंगन में मुझे बाँध लो कि साँस बन्द हो जाये, दिल की धड़कन रुक जाय। मैं शांत, निश्चेष्ट, निष्प्राण हो जाऊँ।"

"इस तरह देख क्या रहे हो अक्षय? मुझे जाने दो, मैं घर जाती हूँ।" कहकर सोमा उठ खड़ी हुई लेकिन उसके अक्षय में परोक्ष-श्रवण की योग्यता होती तो वह सुनता कि सोमा का हृदय कह रहा था: "मुझे जाने मत दो अक्षय! मेरे पैरों में जंजीरें बाँध दो। मुझे यहाँ रहने दो, सदा के लिये, सदा के लिये।"

अक्षय जब उसे बरामदे से बाहर छोड़ने आया तो सोमा ने कहा: "शुक्रिया, धन्यवाद। तुम बहुत अच्छे हो।"

लेकिन सोमा के मन ने कहा:

"अक्षय! तुम कायर हो, मैंने समझा था तुम बदलकर साहसी बन गये हो। लेकिन तुम निरे बुजदिल निकले।"

बरामदे से बाहर जाते हुए ड्योढ़ी पर वह एक क्षरण रुकी।

दूर पर एक धुँधली-सी बत्ती जल रही थी। विदा होते हुए सोमा ने अपना हाथ अक्षय की ओर बढ़ा दिया। अक्षय ने उसे दोनों हाथों में लेकर चूम लिया।

उसी समय सोमा ने उस धुँधले प्रकाश में देखा कि अमर उधर ही आ रहा था।

अमर को आता देख सोमा ने अक्षय के ओठों से अपना हाथ खींच लिया और अमर की ओर आँख उठाये बिना छोटे-छोटे क़दम उठाती वेग से घर की ओर चल पड़ी। अमर उसे कुछ कहने को हुआ। लेकिन उसे तेज़ी से जाते देख कुछ न बोला।

अमर अब अक्षय के मकान के बरामदे की धुँधली-सी रोशनी में

उसके सामने खड़ा था। अक्षय ने हाथ मिलाने को बढ़ाया।

अमर के दिल में आया, इन्हीं हाथों ने अभी सोमा के हाथ थामे हुए थे; उसने हाथ मिलाये बिना नमस्कार कर दिया और बिना कहे बरामदे में पड़ी बेंत की कुर्सी पर बैठ गया।

अक्षय ने ही अपराधी की भाँति कहा :

"सोमा को स्टूडियो में बहुत देर हो गई थी, मेरी गाड़ी में आयी······।"

अमर ने बीच में ही वाक्य काटकर कहा : "आपने बड़ा कष्ट किया अक्षय बाबू।"

"कष्ट क्यों, मुझे खुशी होती है सोमा को सहायता देने में।"

"जिसे भी सहायता की जरूरत हो उसे देना हमारा कर्तव्य ही हो जाता है। फिर सोमा तो आपकी बालसखी है।"

"जी··हाँ, वह तो है। और आज-कल उसे काम भी बहुत रहता है। आप भी काम में ऐसे मशगूल हैं कि वह बड़ी परेशान हो जाती है।"

अक्षय ने सोमा की सफ़ाई में कई बातें कह डालीं।

अमर को सफाई की जरूरत नहीं थी। उसने कभी सोमा के अपराध का संकेत करने वाला एक भी शब्द अपनी ज़ुबान से नहीं कहा था। फिर भी अक्षय स्वयं को अपराधी अनुभव कर रहा था। इसलिये उसे सफ़ाई देने की ज़रूरत पड़ गयी थी।

अमर ने अक्षय की इस विचिकित्सा का समाधान करते हुए कहा :

"अक्षय बाबू ! आप शायद समझते हों कि मैं सोमा को आपके साथ आश्वस्त और प्रसन्न देखकर ईर्ष्यालु हुआ हूँ और अपने मन की आग छिपाने के लिये ही आपको धन्यवाद दे रहा हूँ। बात यह नहीं है। मैं सचमुच प्रसन्न हूँ कि आपने उसे कष्ट के समय आश्वासन दिया है। आप उससे स्नेह करते हैं, वह आपसे स्नेह करती है, मैं दुखी क्यों होऊँ ?"

अक्षय कुछ कहना चाहता था किंतु अमर हाथ जोड़कर अपने घर की ओर आया। वहाँ देखा, सोमा अपने पलंग पर सो चुकी थी।

◇ ◇ ◇

अमर भी थका हुआ था। अक्षय के प्रति सोमा के स्नेह-व्यवहार ने उसे बिल्कुल चिन्तित नहीं किया था। क्योंकि प्रेम के सम्बन्ध में उसकी अपनी स्थापनाएँ थीं। वह समझता था कि प्रेम में ईर्ष्या नहीं होती, प्रेम प्रेम के लिये ही किया जाता है, प्रतिदान की आशा से नहीं। एक से प्रेम की प्रतिक्रिया दूसरे से विद्वेष करने की नहीं होनी चाहिये, आदि अनेक स्थापनाओं से उसका मन सदा प्रसन्न रहता था···किन्तु एक बात उसे इन दिनों भी चिन्तित रखती थी तो वह यह कि सोमा अक्षय से प्रेम करके भी प्रसन्न नहीं है। वह थकी-हारी रहती है। वह अपने मन का काम करके भी प्रसन्न नहीं है। यह समस्या उसके सामने सदैव खड़ी रहती थी और उसे चिन्तित बना देती थी।

इन्हीं चिन्ताओं में विचार-मग्न अमर सो गया।

सुबह उठने पर अमर ने फिर देखा कि सोमा बड़ी थकी-सी है।

अमर सोमा की इस थकान और पीर का कारण जानता था। उसकी बड़ी इच्छा हुई कि सोमा को राहत दे। उसे अपने स्नेह का सहारा दे। आखिर वह उसका पति है। उसे सुखी रखना उसका कर्तव्य है, धर्म है। फिर वह पुरुष ठहरा! लेकिन, सोमा की आँखों में सदैव रहने वाला यह श्रम और यह बेरुखी! यह अमर से अब सहन नहीं होता। इसने अमर के व्यक्तित्व को कुचल दिया था। आज जब वह कुचला हुआ व्यक्तित्व उभरकर उठना चाहता है, क्या अमर उसे सोमा के मोह में पड़कर फिर दबा दे?

किन्तु सोमा नारी है। उसकी अपनी पत्नी है। वह यदि तरुवर है तो सोमा उसके आश्रय पर खड़ी वल्लरी है। सोमा को प्यार करना, उसकी पीर धो देना, उसका काम है। फिर, चाहे सोमा कैसी भी रहे!...

और इसी विचार-धारा में उसने सोच लिया कि वह सविता से न मिलने का वचन सोमा को दे देगा...सोमा को अब इसके लिये कहने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। वह स्वयं सविता से भेंट करके सब कह देगा।

इसीलिये आज जब वह कलाकेन्द्र गया तो सविता को टेलिफोन किया।

"सविता! मुझे तुमसे बहुत जरूरी काम है?"

"काम है तो आ जाओ अमर! तुम्हारे लिये मेरा द्वार सदा खुला है।"

"घर पर नहीं, तुमसे कुछ एकान्त में बातें करनी हैं।"

सविता ने कहा: "अच्छी बात है, एकान्त में करनी है तो मैं होटल एम्बेसेडर में मिलूंगी।"

होटल एम्बेसेडर जुहू का मशहूर नहीं तो 'नामी' होटल था। उसे यह नाम कई कारणों से मिला था। हालाँकि उसकी बनावट में बाँस और काठ की सामग्री लगी थी। पर खिड़कियों और दरवाजे पर रेशमी पर्दे लहराये गये थे—जिस प्रकार कोई सूखी श्यामला-सी पाउडर पोतकर निखार लाने का प्रयत्न करती है; वही हाल था हमारे इस एम्बेसेडर विश्राम-गृह का। चलता खूब था। रविवार को तो यहाँ बैठने को जगह भी नहीं मिलती थी। लोग घंटों बाहर क्यू लगाये खड़े रहते।

सोमवार से शुक्रवार तक यहाँ मक्खियाँ उड़ा करतीं। बैरे बैठे ऊँघा करते और मालिक बैठा हिसाब लगाया करता। फिर भी बंबई

में जहाँ सरकार ने शराब-बंदी कर चोरी-छिपे पीने का रिवाज़ चलाया है—होटल एम्बेसेडर को चाँदी कमाने का रजत अवसर दिया है।

एम्बेसेडर का मालिक बूढ़ा बैरामजी था। इसलिये व्यवसाय और व्यवहार में कुशल था। उसकी छोटी लड़की परीन, एम्बेसेडर की शराब के बाद, दूसरा आकर्षण थी, और इससे होटल को नाम और दाम बराबर मिल रहे थे।

आये दिन कालेजों के युवक प्रोफेसर, विदेशी कर्मचारी, साधारण स्थिति के अभिनेता-अभिनेत्री और अन्य ग्राहक एम्बेसेडर की शोभा बढ़ाते।

बैरामजी सबका स्वागत करता।

जिस प्रकार वह अपने ग्राहकों से पेश आता, वह ढंग शहर भर में अद्वितीय था। वह मुस्कराकर 'सराम साहब' कहता। ग्राहक की पीठ थपथपाता। उसकी कुशल-क्षेम पूछता और तब कहता "जा न, जा न दिकरा! भीतर परीन तो छेज।"

परीन अपने पिता से दुगुनी स्नेहशील थी। वह मुहर्रम की रेवड़ी की तरह अपने को बाँटती।······

फिर भला, ग्राहक मधुमक्खियों की तरह न आते तो क्या करते? दुनिया ने वैराग्य तो नहीं ही ले लिया है और प्रभु की बनाई छवि को देखने जाने, और कभी उसे निकट से छू लेने में पाप नहीं लगता, यह लोग जानते है। यदि ऐसा होता तो दुनिया पाप-भार से अब तक डूब गयी होती।

साँझ की हल्की समुद्री हवाएँ एम्बेसेडर के आसपास मँडरा रही थी; जैसे उसके परवाने भस्म होने को इधर-उधर से आ रहे थे, कारों पर, बसों पर और पैदल ही!

बैरामजी ने काउंटर के निकट कदम रखा ही था कि गठरीधारी अमर बाबू ने प्रवेश किया।

बैरामजी ने अमर का स्वागत किया।

होटल का बड़ा हाल खाली पड़ा था। गुरुवार होने से लोगों के आवागमन की विशेष आशा नहीं थी। गुरुवार को अक्सर लोग उपवास रखते हैं, और शनिवार को उस व्रत के पुण्य को शराब और सुन्दरी के स्नेह से धो डालते हैं। आदमी इतना हल्का-फुल्का रहना चाहता है कि पुण्य का दो-एक औंस भार भी नहीं ढो सकता।

अमर एक कोने में बैठ गया। चाय और बिस्कुट मँगवाये। ब्वाय ने जो पंखा खोल दिया था, उसने स्वयं उठकर बन्द कर दिया, क्योंकि पंखे की परछाइयों और चमक में लोगों की नजर पड़ती है और अमर किसीकी नजर में आना नहीं चाहता है। उसकी दशा लाक्षागृह से निकले पाण्डवों की-सी है। वह अज्ञातवास में, अज्ञात जीवन बिताना चाहता है······।

जाने कितनी देर तक अमर यों ही बैठा रहा। सहसा, उसे लगा कि एक पुलिसमैन उसे घूरकर देख रहा है।

फिर भी अमर ने परवाह न की और यह जानकर कि यह किसी नये पियक्कड को फँसाने की फिक्र में है, वह अपनी सिगरेट का धुआं उडाता रहा। सिपाही लौट गया।

अमर कण्डाला में अपना भविष्य बना रहा था। वहाँ कारखाना खुल गया था। और फेनदार साबुन बन रहा था······।

किसी अप्सरा की झिलमिलाती हँसी ने उसका ध्यान भंग किया। सविता आ गयी, वह झपटकर उसकी ओर आयी।

"अमर बाबू, अकेले बैठे क्या सोच रहे हैं ?" कहकर सविता ने उसका हाथ पकड़ लिया और परीन उसे अपने निजी कमरे तक घसीट ले गयी। मतवाली सविता का वेग और बल थाहकर

अमर विस्मित रह गया। यह औरत—औरत है? शासन करती है मगर प्यार से। दिल देकर हुकूमत उछालती है, यह नहीं कि अपना दिल तिजोरी में रखकर सामने वाले को लूटा करे। स्त्री मानिनी हो, लेकिन अभिमानिनी न हो। सविता मानिनी है। और वह सोमा··· अभिमानिनी। अरे किसका नाम लिया, अब तो वह कुछ ही घंटों में पराई हो जायेगी······।

सविता अमर के सामने बैठ गयी। बोतल मँगायी गयी।

"मगर मैं तो पीता नहीं।"

"तो फिर जीते कैसे हो ?"

"क्या बिना पिये कोई जीवित नहीं रह सकता ?"

"अमृत के बिना आदमी मुर्दा ही है।"

"इस अमृत को धन्यवाद।"

सविता ने बोतल मुँह से लगा ली। फिर एक प्याली आधी भरकर अमर के होठों से लगा दी। अमर ने एकदम अस्वीकार किया।

अमर ने कहा : "सविता ! मैं तुमसे खास बात कहने आया हूँ।"

"तुम्हारी तो हर बात खास होती है अमर !" सविता ने एक प्याला होठों पर लगाते हुए कहा।

"और मैं भी तुम्हें एक खास बात कहने वाली हूँ।"

अमर : "पहले तुम्हीं कहो।"

सविता : "यदि तुम आज तीन पेग पी लो तो मैं तुम्हें इनाम दूं।"

"कैसा इनाम ?"

"वह तो पीने के बाद दूंगी।"

"नहीं, मुझे इनाम नहीं चाहिये सविता !"

अमर को उसके खास इनाम से भी इन्कार करते देख सविता ने कहा : "तब तो तुम अवश्य ही कोई खास बात कहने आये हो, कहो।"

अमर ने कहा : "तुम्हें देखकर ही मैं जो कहने आया था सब भूल गया।"

सविता अपनी विजय पर प्रसन्न हुई। बोली :

"सब भूलने के लिये ही हमें याद करते हो न ? कभी हमें भी न भूल जाना।"

अमर : "तुम्हें देखकर केवल भगवान की कला का स्मरण होता है।"

सविता : "यह आपकी दया है।"

अमर : "सोचता हूँ, क्या सब स्त्रियाँ पुरुषों के लिये इसी तरह प्रेरणा-दायिनी होती है ?"

सविता : "पुरुष भी स्त्रियों के लिये प्राण-प्रणेता होते हैं अमर बाबू !"

अमर : "लेकिन एक बात समझ में नहीं आती।"

सविता : "कौन बात ?"

"घर की पत्नी ऐसी प्रेरणा-दायिनी क्यों नहीं बनती ?"

"प्रेम और आनन्द ही प्रेरणा देते हैं अमर, जहाँ मुक्त प्रेम होता है वहीं जीवन को प्रेरणा मिलती है। विवाह में ये नहीं रहते क्या ?"

"कुछ विवाहों में नहीं रहते, क्योंकि ये दोनों मुक्त आत्माओं में ही संयत है और विवाह में मुक्ति नहीं वल्कि अनिवार्यता—और बन्धन का विचार आ जाता है।"

कुछ सोचकर फिर सविता ने कहा : "और मुश्किल यह है कि वह बन्धन भी स्नेह का नहीं सामाजिक, आर्थिक स्वार्थों का बन्धन है।"

"ऐसा क्यों होता है सविता ?" अमर ने पूछा।

"माता-पिता ही नहीं लड़कियाँ भी प्रायः अपनी आर्थिक समस्या हल करने के लिये विवाह करती हैं, जिससे विवाह जीवन की आर्थिक योजना का रूप ले लेता है। उसमें प्रेम की मुक्त धारा नहीं रहती।"

अमर : "और यह योजना बड़ा अस्वाभाविक रूप पकड़ लेती है।"

सविता : "हाँ, स्त्री पुरुष का उपयोग करती है अपनी अर्थ-व्यवस्था चलाने में और पुरुष दिन को भोजन-सम्बन्धी समस्या हल करता है और रात को......

अमर : "ठीक है, तभी बर्नार्ड शा ने विवाह को सामाजिक विधान कहा है, अनियंत्रित भोग की छुट्टी मिल जाये।"

अमर पूछता है :

"यदि पत्नी पति से प्रेम न करे तो पति को क्या करना उचित है ?"

"पति बहुत-सी बातें कर सकता है।"

"एक-आध मुझे भी बताइये।"

"क्यों, क्या सोमा आपसे प्रेम नहीं करती ?"

"प्रतीत तो ऐसा ही होता है।"

"वह कैसे ?"

"वह मुझसे मिलकर प्रसन्न नहीं होती।"

"शायद रूठ गई हो ! आपने उसकी साड़ी की प्रशंसा न की हो ?"

"नहीं, वह मेरे काम की प्रशंसा नहीं करती।"

"आप क्या उसकी प्रशंसा करते हैं ?"

"मैं तो उसकी प्रशंसा करता ही रहा। लेकिन जब मैंने काम शुरू किया......"

"तो आप उसकी प्रशंसा करना भूल गये, और आशा करते रहे कि वह आपकी स्तुति करती रहेगी ?"

"लेकिन वह तो अब दूसरे के साथ उठ-बैठकर, हँस-खेलकर ही खुश है।"

"आप उसके साथ नहीं हँसेंगे तो वह दूसरे से हँसेगी, खेलेगी, आखिर वह स्वयं कमाती है, आपकी मोहताज तो है नहीं।"

"मगर मुझे क्यों वह दूसरों से बात करने से मना करती है ?"

"उसे आप पर विश्वास नहीं कि आप दूसरे से बात करने के बाद उससे बात करना पसन्द करेंगे।"

"इतना विश्वास तो होना ही चाहिये।"

"जो होना चाहिये वह सब तो होता नहीं है, और उसके लिये बड़ी समझदारी की जरूरत है।"

"यह समझदारी का मतलब ?"

"मतलब यह कि एक दूसरे को समझना, उसकी कमजोरियों को समझना, उन्हें निभाना, यही सब……"

अमर ने कहा : "मेरा ख्याल है, मेरी पत्नी में कोई कमजोरी ही नहीं…"

"तो देवी दुर्गा ही समझिये।"

"देवी कहना ही ठीक है, वह मानुषी तो नहीं, उसे संतान की भी इच्छा नहीं।"

"और हाँ, काम की बात तो भूल ही गया। उनकी आज्ञा सुनाने ही तो मैं आपके पास आया था।"

"आज्ञा आपको हुई, मुझे क्यों सुनाने आये ?"

"क्योंकि उसमे आपका सम्बन्ध है !"

"तो मेरा नाम भी आ गया उनके अपराधियों की फहरिस्त में…"

"जी, आपका नाम ही प्रथम है।"

"मेरा अपराध ?"

"आप मुझसे मिलती हैं, मुझसे बोलती हैं।"

"क्या ?"

"आपका मुझमे नहीं बल्कि मेरा आपसे बोलना उनके दंड-विधान में अपराध ही है।"

"तो आप पवित्र पत्नी-भक्त होकर भी क्यों अपवित्र अपराध करते हैं ?"

"मैं तो इसे अपराध नहीं समझता, लेकिन···"

अधूरा वाक्य पूरा करते हुए सविता ने कहा :

"लेकिन आप पत्नी की आज्ञा नहीं टाल सकते।"

"केवल आज्ञा-पालन का प्रश्न नहीं।"

"तो ?"

"उसे अप्रसन्न रखकर गृहस्थ-जीवन क्या चलेगा ?"

"केवल किसीकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता के लिये जीवन भी क्या जीवन है ? फिर वह चाहे गृहस्थ-जीवन ही क्यों न हो ?"

"यह मैं जानता हूँ, लेकिन कई ऐसे बन्धन हैं जिन्हें क़ायम रखने के लिये दूसरे बन्धन भी स्वीकार करने पड़ते हैं।"

"मतलब यह कि एक ज़ंजीर को मज़बूत रखने के लिये दूसरी ज़ंजीरें भी बाँधनी पड़ती हैं।"

"यह भी ठीक ही है।"

"तो कौन-सी नयी ज़ंजीर बाँधना चाहते हैं आप ?"

"अनिच्छा से कोई काम करना भी ज़ंजीर बाँधना ही है, और वह है यह कि मुझे आपसे सदा के लिये विदाई लेनी होगी।

"मैं अब कला-साधना छोड़ दूंगा।"

"तो क्या केवल पत्नी-साधना ही करेंगे, यह साधना भी बुरी नहीं।

"और कला की साधना से यह कम दिलचस्प भी नहीं होगी··· मगर कब तक करेंगे यह साधना ?"

"जब तक सोमा फिल्म में काम करेगी।"

"वह कब तक करेगी ?"

"जब तक हमारे पास भावी गृहस्थ की सुरक्षा के लिये कुछ धन एकत्र न हो जायगा।"

"कितना धन ?"

"यही कोई ५० हजार, एक लाख ।"

"अभी से तुम्हें पता नहीं कि ५० हजार या एक लाख, तो बाद में जब एक लाख भी हो जायगा तो तुम्हारे ५ लाख, १० लाख और फिर २० लाख, ४० लाख के मनोरथ होते जायेंगे ।"

"नहीं, वह कहती है, एक लाख पर सन्तोष कर लेगी, और तब वह काम छोड़कर घर बसायेगी ।"

"घर बसाने के लिये जो शर्तें रखें, उसकी शर्तें ही रह जाती हैं, घर नहीं बसता ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि शर्तों का रूप बदलता रहता है, वे दिन-दिन अधिक बड़ी होती जाती हैं ।"

"लेकिन उनकी सीमा-निर्धारण अपने हाथ में है ।"

"अपने हाथ में नहीं है अमर बाबू । आपकी पत्नी घर बसाने के लिये एक लाख रुपये की पूंजी चाहती है । हमारे पास पाँच लाख से भी अधिक पूंजी है, फिर भी घर के तौर पर घर नहीं बसा ।"

"क्यों नहीं बसा सविता ? आज तक मैंने आपसे यह प्रश्न नहीं पूछा । सोचा, यह आपका निजी मामला है । और फिर शायद उत्तर देने में कष्ट हो आपको, कभी पूछा ही नहीं मैंने ।"

सविता ने एक लम्बी साँस में सारी कहानी याद करते हुए कहा : "सब जानकर क्या करेंगे आप, लेकिन इतना समझ लीजिये कि जब तक स्त्री-पुरुष दोनों साथी प्रेमपूर्वक अपने साहचर्य को ही मुख्यता नहीं देते तब तक दोनों का साथ नहीं निभता ।"

"आपने किसे मुख्यता दे दी, जो आपका साथ नहीं निभता ।"

"मैंने तो नहीं, लेकिन हमारे सेठ जी तो दुनिया में पैसे के अलावा किसी चीज को कुछ मानते ही नहीं । यह पैसा तो सचमुच ही विवाह का सबसे बड़ा दुश्मन है ।"

"मगर सोमा का तो ख्याल है, पैसा होगा तभी गृहस्थी चलेगी ? इसीलिये वह सच्चे अर्थों में गृह-जीवन बनाने के लिये पैसा जोड़ने में लगी है।"

"मैं यह नहीं मानती।" सविता ने कहा : "दोनों में सच्चे प्रेम की प्यास हो तो पैसे की प्यास भूल जाती है। उसका दिल भी अवश्य कहीं दूसरी जगह अटका होगा।"

अमर को अक्षय का स्मरण हो आया। सविता ठीक ही कह रही थी। उसके हर वाक्य में अनुभव-सिद्ध सत्य था। फिर भी उसने सोमा के अन्य पुरुषरत होने की शिकायत नहीं की। केवल कहा :

"सविता ! सोमा यह नहीं चाहती कि मैं आपसे मिलूँ, तो अब भेंट नहीं होगी।"

सविता एक क्षण चुप रही। फिर आगे हाथ बढ़ाकर मिलाते हुए बोली : "मैं आपके मार्ग में स्वयं नहीं आऊँगी।"

"लेकिन जब भी आप चाहें, मेरा द्वार आपके लिये खुला है।"

अमर ने सविता का हाथ पकड़े-पकड़े कहा : "आपका उपकार मैं जन्म भर नहीं भूलूंगा।"

सविता ने हाथ पीछे लेते हुए और हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा :

"पिछला भुलाकर नया बनाने में सुख है। कभी भी चाहें तो याद कीजियेगा। अच्छा नमस्ते !"

◇ ◇ ◇

अब सविता से वह कभी न मिलेगा—विचार से अमर का मन बोझिल हो जाता था। सोमा के बाद उसने सविता को ही जाना था।

सविता से बातें कर उसका दिल हल्का होता था, वह अधिक सहिष्णु, कोमल, उदार और अनुभवशील थी।

सोमा अमर की पत्नी थी, सुन्दर थी लेकिन अल्हड़ और हठीली थी।

इसी तरह की अनेक तुलनात्मक विचारों में बहता, डूबता अमर अपने घर के द्वार पर पहुँचा।

बाहर ही अक्षय की मोटर खड़ी थी।

उसके मन में आया, वह तो सविता से कभी न मिलने का वचन दे आया है। अब वह क्या सोमा से यह वचन माँगे कि वह अक्षय को कभी घर न आने देगी, उसके साथ स्टूडियो नहीं जायेगी, समुद्र के किनारे जाकर दिल नहीं बहलायेगी ?

दबे पाँव वह बरामदे में पहुँचा। देखा, अक्षय सोमा के पास सोफे पर बैठा था। पास में पड़े टेबल लैम्प का प्रकाश सोमा के चेहरे पर पड़ रहा था। बाकी कमरे में अन्धेरा था। सोमा की आवाजें कानों में पड़ीं :

"""मैं दिन भर काम से थक जाती हूँ, उन्हें दो बातें करने का भी समय नहीं। कलाकारों"""

"""कलाकारों से शादी न करे कोई"""और अब एक लड़की के जाल में भी फँस गये हैं।"

अक्षय ने कहा : "तुम तो कहती थी, मैं उससे कभी नहीं मिलने दूँगी।"

सोमा : "कितनी ही बार कह चुकी हूँ, मगर वह सुनते ही नहीं।"

अक्षय क्रोध में बोला : "नहीं सुनता तो न सुने। उसे याद कर-करके इतना दुःख क्यों उठाती हो। भूल जाओ उसे, वह भी कोई इन्सान है ? शादी तो कर ली पर अपनी जिम्मेदारियों से बचता है।"""सोमा !

तुम स्वतन्त्र आजीविका कमा रही हो। तुम्हें कोई बन्धन जबर्दस्ती किसीसे नहीं बाँध सकता। मैं उम्र भर तुम्हारी सेवा में रहने को तैयार हूँ।"

सोमा चुपचाप सुन रही थी। अक्षय को मौका मिला। उसने कहना जारी रखा :

"तुमने मुझे पहचाना नहीं सोमा ! मैं बचपन में ही तुम्हारा हो गया था। तुम्हारे अलावा मैं किसी स्त्री को नहीं जानता। मेरी दुनिया तुम तक सीमित है। तुम्हीं मेरी खुशी हो, मेरी जिन्दगी हो, तुम्हें दुखी देखकर मुझे भी चैन नहीं मिलती।···सोमा ! अब भी समय है। पिता जी अब मेरे कामों में ज्यादा दखल नहीं देते। वे तुम्हें अब कुछ न कहेंगे। उम्र भर मैं तुम्हारा रहूँगा···तुम्हें यह काम भी न करना पड़ेगा, घर बसाने को मेरे पास सब कुछ है···धन है, व्यापार है···केवल तुम नहीं हो···एक तुम्हारी कमी है।"

सोमा : "अक्षय, तुम भूल क्यों जाते हो कि मैंने अमर से विवाह किया है। विवाह की मजबूत रस्सियों से हम बन्धे हुए हैं। विवाह हँसी-खेल नहीं, कानून कुछ भी कहे जब तक पति-पत्नी के दिल में एक दूसरे के लिये नफरत नहीं हो जाती, दोनों एक दूसरे के प्राण-वैरी नहीं हो जाते, विवाह का सूत्र उन्हें बाँधे रहेगा। मैं अमर की विवाहिता पत्नी हूँ !"

अक्षय : "विवाहिता समझकर ही अमर तुम्हारी उपेक्षा कर रहा है सोमा ! यह विवाह का दुरुपयोग है। उसे यह करने का अधिकार नहीं, हरगिज़ नहीं, यह नीचता है, बर्बरता है।"

अमर ने परदे के पीछे से यह सब सुना और चुपके से जाकर बिस्तर पर लेट गया।

बिस्तर पर लेटे हुए वह सारी रात करवटें लेता रहा, उसके विचार करवटें बदलते रहे।

कभी-कभी उसे सचमुच यही अनुभव होता कि उसने सोमा को विवाह की कड़ियों में जबर्दस्ती बाँध रखा है। सोमा छटपटा रही है। उसका मानुषी धर्म है कि वह उसे मुक्त कर दे।

वह देख चुका था कि सोमा अक्षय से ही दिल की बातें करती है, वह उसकी सच्ची जीवन-साथिन है। दोनों में स्नेह है, प्रेम है, तब उसका कर्त्तव्य स्पष्ट है। उसे दोनों के मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहिये।

अपने दिल के गहरे परदों में उसने झाँककर देखा तो उसने पाया कि वह सोमा को प्रेम करता है। वह सोमा को सुखी रखना चाहता है।

तो वह सोमा के सुख के लिये बड़ी से बड़ी कुर्बानी देगा। इसीमें उसकी आत्मा को सन्तोष मिलेगा।

◇ ◇ ◇

सुबह चाय का समय होने तक वह निश्चय कर चुका था कि वह सोमा को विवाह-बन्धन से मुक्त कर देगा। यही नहीं, बल्कि वह अक्षय को सोमा से विवाह करके सुखी जीवन बिताने की प्रेरणा देगा।

यही सोचकर उसकी रग-रग में खुशी की लहर दौड़ गई।

आज उसके सीने पर रखा गुरुतर भार एकदम ओझल हो गया। बहुत दिनों से उसकी जिन आँखों में अन्धेरा छाया था, आज वहाँ प्रसन्नता की चमकें चमक उठीं।

ऐसा लगता था, उसके हाथ एक कीमती हीरा आ गया है। और अन्धकार का वह काला पर्दा इस हीरे की रोशनी से हट

गया है और अमर का मार्ग प्रकाशित हो गया। बहुत समय से उलझी समस्या आज सुलझ गयी, इस हेतु अमर के आनन्द का अन्त न था।···

अब निश्चय ही वह सोमा को सुखी बना सकता है। उसे कहीं कोई संशय नहीं। कहीं कोई दुविधा नहीं।

फिर, मन ने पूछा कहीं यह सब तुमने अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर तो नहीं कर रहे हो? तुम स्वयं सविता को अपने जीवन में लाने के लिये, सविता का मार्ग, अपना मार्ग साफ तो नहीं कर रहे हो ?

नहीं, नहीं, नहीं, मन ने विद्रोहपूर्वक उत्तर दिया : एक कलाकार इतना क्षुद्र नहीं हो सकता। इस विचार को लेकर वह बाहर निकला।

रास्ते भर विचारों का उतार चढ़ाव उसी प्रकार चलता रहा। मनुष्य का मन ही तो है, आशा के उठते हुए झूले और निराशा के गिरते हुए पैंग, दोनों उसे विचारों के प्रवाह में वहा ले जाते हैं।

कलाकेन्द्र आकर भी अमर का उत्साहित मन किसी चीज़ में नहीं लगा। जब मनुष्य बहुत हर्षित होता है तो उसका मन चंचल हो जाता है। अपने उत्साह में वह सभी कामों को पूर्ण देखना चाहता है।

रह-रहकर उसका मन यही सोच रहा था कि अपने कार्य-क्रम को किस प्रकार पूरा कर दे। स्वप्न-सिद्धि कैसे हो। आज तक जो साधना उसने की उसका फल मिलने वाला ही है।

इसी तरह चक्कर काटते रात के दस बज गये थे। कभी किसी होटल में जाता कभी किसीमें।

अमर उठकर बाहर निकल आया। समुद्र की ताज़ी हवा ने उसके

प्राणों की स्फूर्ति को दुगुना कर दिया। सोमा और अक्षय की मूर्तियाँ स्पष्ट तैर आईं।

तो इन दोनों का ब्याह कैसे हो जाये ?

क्यों नहीं, दूसरे ही क्षण मन उत्तर दिया : अक्षय से मिलकर उससे कह दिया जाये।

अक्षय से मिलने का विचार उसे पसन्द आया। उससे सब बातें खुल कर हो जायें। वह बेचारा भी पशोपेश में न रहे। फिर सोमा से भी कह दूंगा।

इस विचार से वह कई बार अक्षय के द्वार तक गया मगर लौट आया।

आखिर उसने पत्र द्वारा अपनी बात अक्षय तक पहुँचाने का निश्चय किया। उसने सोचा, यह बात ऐसी ही है जो लिखकर ही कही जा सकती है।

आखिर उसने पत्र लिखा :

'प्रिय अक्षय बाबू,

पत्र पढ़कर आपको आश्चर्य तो न होना चाहिये; क्योंकि यह सब कुछ मैंने पिछले दिनों अनुभव किया, उसीका स्वाभाविक परिणाम है।

सोमा आपकी बालसखी है। किन्हीं पारिवारिक कारणों से आप और सोमा जीवन-साथी न बन सके और आपके बजाय मुझे सोमा के पति का रिक्त स्थान लेना पड़ा।

पिछले दिनों सोमा ने चाहा कि मैं उस स्वरूप, पद-मर्यादा और तौर-तरीके में ढल जाऊँ, जिसमें आप हैं । मैं उसके इच्छित आदर्शों के अनुकूल अपने को नहीं ढाल सका।

मैं यह मानता हूँ कि मैं सोमा को सुख और शांति न दे सका और भविष्य में भी न दे सकूंगा यह मुझे डर है।

मेरा अन्तरतम कहता है कि सोमा आपकी है, आप सोमा के हैं और यदि आप दोनों साथ रहें, पति-पत्नी और स्त्री-पुरुष की तरह साथ रहें तो सुखी रह सकते हैं। इससे सोमा के जीवन में नई चाँदनी खिलेगी। सोमा को सुखी देखकर मैं सुखी रह सकूँगा।

मैं उसपर वैसा अधिकार नहीं रखना चाहता जैसा साधारणतया विवाहित पति रखते हैं।

एक बात और, मैं विश्वास दिलाता हूँ वह सर्वथा कुमारी है। हमने विवाह के बाद ही प्रण किया था जब तक हम घर बसाने योग्य न हो जायेंगे तब तक सन्तान की इच्छा नहीं करेंगे।

आप अब उससे उसी तरह विवाह कर सकते हैं जैसे किसी कुमारिका से किया जाता है।

मैं अपने पद से हटता हूँ और चाहता हूँ कि आप दोनों का विवाह हो जाये। मैं स्वयं इस कार्य को यथाशीघ्र पूरा करना चाहता हूँ।

उत्तर की प्रतीक्षा में रहूँगा। सस्नेह

तुम्हारा,

अमर'

पत्र डालकर अमर का अंतर-भार हल्का हो गया।

वह इस पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा। लेकिन अक्षय की ओर से कोई उत्तर न मिला।

तब उसे दूसरा पत्र लिखा।

'प्रिय अक्षय,

कल दिन भर मैं पत्रोत्तर की प्रतीक्षा करता रहा।

मैंने लिखा था न, अब तुम अपनी झिझक छोड़ो और सोमा के जीवन-साथी बनकर सुख से रहो। मैं निश्चय ही तुम्हें और सोमा को सुखी देखना चाहता हूँ। क्या तुम्हें मेरी बात पर, मेरे कथन पर विश्वास नहीं? मैं क्योंकर साबित कर दूँ अक्षय कि तुम दोनों के लिये, दम्पति

रूप में देखने की मेरे मन में क्या-क्या कल्पनाएँ हैं, भावनाएँ हैं और आशाएँ हैं।

क्या मेरी आशा पूरी न होगी ?

यह तो निश्चित जानो कि मैं तुम दोनों को परिणय के पाश में बाँधकर ही चैन लूँगा। तुम अमर को नहीं जानते अक्षय ! अमर जब एक निर्णय कर लेता है तो प्राणपण से उसे पूरा करता है। वह भावनाशील है, उसकी भावना का अपमान न करो और सोमा को स्वीकार करो।

तुम क्या यह तो नहीं सोचते कि सोमा का शरीर···? नहीं-नहीं अक्षय, तुम भूल करते हो, सोमा अभी भी अछूती कली है। वह चिर कुमारिका है। मैंने उसे सदैव नैवेद्य की भाँति सहेज कर रखा है। इस नैवेद्य को प्रेमदेवता के चरणों में अर्पण करता हूँ···नहीं, नहीं, तुम्हारे द्वारा ही यह कार्य सम्पन्न हो सकता है।

मैंने सोमा को अपने साथ कभी प्रसन्न न देखा। वह हँसती भी थी तो उसकी हँसी में एक अजीब सूनापन मुझे महसूस होता था। वह सूनापन और कुछ नहीं, उसके जीवन में तुम्हारा अभाव था। अक्षय ! मुझे पहचानते देर न लगी और जब मैंने इस चीज को जान लिया तो तुरन्त इस प्रयत्न में लग गया कि सोमा तुम्हारी रहे, तुम्हारे पास रहे···

किसी अलभ्य पदार्थ को, किसी फूल को पाकर मनुष्य प्रसन्न होता है। वह सोचता है कि अब इसका उपभोग कर मुझे तृप्ति मिलेगी। मेरा जीवन सुगन्ध से परिपूर्ण हो जायगा। लेकिन अक्षय, सच मानो, आनन्द और तृप्ति उस पदार्थ या पुष्प के उपभोग में नहीं, उसकी गंध का हरण करने में नहीं, आनंद तो इसमें है कि उसे किसी इष्टजन, किसी इष्टदेव के चरणों में चढ़ा दें। फूल अपनी डाली पर शोभा देता है। रत्न अपनी जगह पर चमकता है।

'सोमा-रत्न' तुम्हारा है। यह मुक्ता तुम्हारे गले का हार बनकर

भी सुशोभित होगा, मेरी आत्मा साक्षी है।

तुम्हें और सोमा को जीवन-संगी के रूप में देखने को मैं किस प्रकार लालायित हूँ अक्षय ! तुम्हें कैसे बतलाऊँ ?

तुमने मेरे पहले पत्र का भी उत्तर न दिया ? इस पत्र का उत्तर आज ही दो, अभी दो।

सोमा की आँखों की यह बेचैनी, यह सूनापन और उदासी अब मैं अधिक नहीं देख सकता, अक्षय !

सोमा का जीवन-दीप तुम्हारे स्नेह के बिना बुझ जायेगा। तुमने कभी इस पर सोचा है ? तुमने सोचा होता, तुम्हें इसकी फिक्र होती तो यों अकेले उससे दूर न रहते, किसी भी प्रकार उसे पाने का प्रयत्न करते ! ठीक है न ?

अक्षय। अब भी कोई देर न हुई है।

तुम्हारा

अमर'

यह पत्र लिखकर वह डाकखाने में डाल आया और घर आकर उसने अपने चलने की तैयारी शुरू कर दी।

उसे याद आया एक सप्ताह बाद उसने अपने चित्रों का प्रदर्शन करना है। तब तक तो ठहरना चाहिये। लेकिन अब उसे बम्बई में साँस लेना भारी हो रहा था। घर में वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। इन चिट्ठियों के बाद वह वहाँ कैसे ठहर सकता है ?

मगर जाये कहाँ ? कुछ निश्चय नहीं। बद्रीनाथ जाये या कैलाश अथवा बम्बई में ही किसी कोने में बिस्तर डाल दे ?

उसने अपने दो-चार कपड़े उठाये। एक टावेल में उन्हें लपेटा, सूटकेस का वज़न कौन ढोये, अपनी दराज में कुछ रुपये-पैसे थे, ले लिये। सोमा के सारे सामान को 'नमस्ते' किया। घर की देहली पर चुपके से प्रणाम किया। रसोई महाराज और मेहता जी को आवाज़ दी। दोनों आये।

कहा : "मैं बाहर जा रहा हूँ। घर की पूरी सम्भाल रखना।"

दोनों को विस्मय हुआ कि आज मालिक यह क्या कह रहे हैं। पर, यह सोचकर शांत रहे कि इनके दिमाग में ही कोई पुर्जा ढीला है···।

जाने से पहले उसने बोरीबन्दर के पब्लिक टेलिफोन से फिर सविता को फोन किया और कह दिया :

"सविता, मैं आज अभी बम्बई से जा रहा हूँ। एक सप्ताह बाद मेरे चित्रों की प्रदर्शनी है।

"चित्र सभी तैयार हैं, तुम चाहो तो प्रदर्शनी स्थगित कर दो और चाहो तो स्वयं प्रबन्ध करवा लो। मैं तब तक वहाँ पहुँच जाऊँगा, कुछ कह नहीं सकता।

"उम्मीद तो नहीं कि मेरे चित्रों में से कोई बिके, मगर कोई बेवकूफ इनका ग्राहक मिल जाय तो पूना समाधान-गृह, सिटी पोस्ट के सामने पते पर खबर देना। मैं वहाँ एक सप्ताह ठहरूँगा और उसके बाद बद्रीनाथ जाऊँगा।"

◇ ◇ ◇

गाड़ी आने में कुछ देर थी। अमर बागीचे में पड़ी बेंच पर बैठ गया।

"क्यों बच्चा, आना-दो आना मिलेगा ?"

अमर का ध्यान भंग हुआ। एक तिलकधारी-चिमटाधारी साधु फक्कड़ सामने खड़ा था।

उसका रंग-रूप देख अमर को हँसी आ गयी।

"हँसता है बे ! साधु-सन्त-महात्मा पर हँसता है। एक फूंक मारेगा तो भस्म हो जायेगा।"

"बीड़ी पीश्रोगे बाबा ।"

"अच्छा बच्चा दे दे, वही दे दे जो तेरी सरधा-भगती हो ।"

अमर ने सिगरेट निकालकर सन्त-महात्मा को दे दी ।

"अब तो मेरा उद्धार होगा बाबा ? और किसीकी फूंक से उड़ूंगा तो नहीं ।"

"नहीं बच्चा । वह तो हमारा धन्धा था, सो कह दिया । कौन किसकी फूंक से उड़ता है । लोग डर जाते हैं । तू कुछ दुखी दीखता है ? कोई प्रेमिका भाग गयी क्या ?"

अमर ने बाबा की ओर आश्चर्य से देखा ।

"हमने दुनिया देखी है बच्चा । बम्बई में तो ऐसा मामला रोज-रोज होता है । हर दिन कोई छोकरी नौ-दो ग्यारह होती है । बता तुझे क्या है ?"

अमर की केप्स्टन सिगरेट ने बाबा के दिमाग पर काफी असर किया । फिर भी अमर उसके बातचीत के ढंग और अनुभव से काफ़ी प्रभावित हुआ ।

बाबा तबतक अपना झोली-डंडा-चिमटा जमीन पर रख आसन मारकर बैठ गया ।

"तू बड़ा दुखी है बच्चा ।"

"अब जाओ माफ करो बाबा ! दूसरी सिगरेट मिलने वाली नहीं···।"

"न देना बच्चा ! तू क्या देगा ? साईं बाबा दिलाता है तब तो तू देता है । तू तो खाक का पुतला है, पल भर में माटी में मिल जायेगा । तेरे भाग में अफसरी लिखी है बच्चा, तू उससे दूर भाग रहा है । माई तेरी बड़ी दिल वाली है कोई······।"

अमर को लगा कि साधु की बातों में कुछ तथ्य है ।

"सब साईं बाबा की किरपा और अनुभव से बोलता है हम······

दुनिया एक जंजाल है, उसमें क्यों पड़ा है। चल, हमारे साथ रामेश्वर चल, बद्री-केदार चल, तेरी मर्जी हो उधर चलेगा। साधु को क्या? जिधर पैर बढ़ाया, उधर अपना राज्य।......जरा पास में आकर: "तेरा जैसा बाबू पढ़ा-लिखा साधु बनेगा तो बहुत-सा लोग चरण धोयेगा। जो लोग आज तुझको तीस रुपये का नौकरी नहीं देगा, कल वही तेरा पैरों का धूल उठायेगा। बच्चा, सब अनुभव से कहता है। बद्री-केदार चलेगा...अरे फिकर मत कर, उधर भी बड़ा-बड़ा खूबसूरत पहाड़ी सुन्दरी मिलेगा। फिर बाबा लोगन को क्या कमी......?"

अमर का मन वैराग्य की ओर झुक गया था। और बद्री-केदार की सैर करने लगा था। पर जब साधु ने बताया कि साधु लोगन को सुन्दरी की कमी नहीं तो वह चौंक पड़ा। उसे इस धूर्त पर क्रोध आ गया। "महाराज, जाते हो यहाँ से कि पुलिस को बुलाऊँ?"

साधु ने अपनी दाल न गलती देख झोली उठाई। "अच्छा एक और सिगरेट दे दे। सन्तन चला जायेगा। सन्तों को क्या? तू तेरी निबटा, जोरू तेरी गयी है, तो हमें क्यों फिकिर। हम तो तुझे बद्री-केदार में नया-नया माल दिला......।"

अमर ने साधु की ओर एक सिगरेट फेंक दी। और अपनी नजर फेर ली।

अजीब है दुनिया और अजीब हिन्दुस्तान की किस्मत! एक ओर सेठ-साहुकार और शासक देश को ठग रहे हैं और दूसरी तरफ ये साधु-संत और सुन्दरी-समूह उसे लूट रहे हैं। जैसे, देश एक बहुत बड़ा मुर्दा है और चील, कौए, गिद्ध उसे नोचकर खा रहे हैं। अमर को घृणा हो गयी।

◇ ◇ ◇

रात के ग्यारह बजे तक सोमा को कोई नयी बात महसूस नहीं हुई। अमर इन दिनों प्रायः देर में आता ही था। लेकिन ग्यारह के बाद सोमा की आँख दरवाज़े पर लग गयी। ग्यारह बजे, बारह फिर भी अमर नहीं आया।

नौकरों से पता लगा था कि बाबू एक छोटी-सी पोटली लेकर बाहर निकले हैं, इससे खटका हुआ। लेकिन सोमा को यह आशंका नहीं हो सकती थी कि अमर इस तरह कभी न आने के लिये घर से चला जायेगा।

बारह से एक तक वह दहलीज़ पर ही खड़ी राह ताकती रही। तरह-तरह की सम्भावनाएँ उसके मस्तिष्क में उमड़ने लगीं। कभी ख़्याल भी आता, कहीं किसी दुर्घटना में न फँस गये हों। लेकिन फिर यह सम्भावना प्रबल हो जाती—ऐसा न हो कि सविता के साथ चले गये हों। हाँ—तभी तो वह उससे न मिलने का वचन नहीं देते थे। इतने आग्रह के पीछे प्रबल कारण होता ही है। उसे यही बात अधिक सम्मत मालूम हुई। स्त्री के वश में होकर पुरुष कुछ भी कर सकता है। पुण्य-पाप की रेखाएँ भी उसकी आँखों के आगे से मिट जाती हैं। दिन का समय होता तो वह उसी समय गाड़ी लेकर सविता का पता निकालती और उसके शिकंजे से अमर को छुड़वा लाती। लेकिन अब तो रात के दो बजे थे।···

इन्हीं आशंकाओं की भँवरों में गोते खाते और अपनी अजीब परिस्थितियों, विचित्र उलझनों के सूत्र सुलझाते रात बीत गयी। सुबह की कुछ घड़ियों में नींद ने घेर लिया।

आँख खुली, तो घड़ी में दस बजे थे। मोटर लेकर सोमा कलाकेन्द्र में पहुँची।

सौभाग्य से उस समय कलाकेन्द्र का द्वार खुला था। एक सप्ताह में ही कला-भवन की प्रदर्शनी जहाँगीर आर्ट गैलरी में होनी थी। उसकी तैयारियों में सविता पूरे उत्साह से भाग ले रही थी। और अब, अमर

के जाने के बाद तो उसकी जिम्मेदारी और भी बढ़ गयी थी।

सोमा सीधा कला-भवन के अन्दर आ गयी। सविता को उसने पहले कभी देखा न था, मगर उसे देखते ही वह पहचान गयी कि यही अमर की प्रेरणा और उसकी प्रतिद्वन्द्विनी है।

सविता को वहाँ देख उसे एक प्रकार का आश्वासन भी मिला। उसका यह भय दूर हो गया कि अमर को सविता भगा ले गयी है। उसे यह विश्वास था कि स्त्री ही पुरुष को गुमराह कर सकती है, पुरुष में इतना खिंचाव नहीं होता कि स्त्री सब भूलकर पुरुष के पीछे पागल बन जाये।

सविता की भी सोमा से यह पहली ही भेंट थी। फिर भी वह सोमा को पहचानती थी। 'कसौटी' फ़िल्म में उसे देखा था। उसके ओजस्वी व्यक्तित्व से उसका परिचय था और मन ही मन वह सोमा से उसके रूप के कारण ईर्ष्या करती थी। सोमा को सामने देख सविता ने बैठने का इशारा किया और कहा :

"शायद आपसे भेंट का सौभाग्य नहीं मिला, लेकिन आपकी तारीफ सुनी है।"

सोमा ने अपनी प्रशंसा पर प्रसन्नता प्रगट किये बिना प्रश्न किया :

"आप ही सविता हैं न ?"

"जी, आपने ठीक पहचाना है।"

"अमर बाबू के कला-भवन में आप साझीदार हैं ?"

"आप ठीक कहती हैं, साझीदार क्या हूँ, कुछ दिलचस्पी अवश्य ली है इसे बनाने में।"

"और कुछ दिलचस्पी उन्हें बिगाड़ने में भी ली है आपने न ?"

सोमा ने इतने विषाक्त स्वर में यह बात कही थी कि सविता छटपटा गयी। उसे इतनी जल्दी प्रहार की आशंका नहीं थी। यह तो वह जानती थी कि सोमा उससे प्रेमालाप करने नहीं आयी थी और कुछ जली-

कटी उसे सुननी ही पड़ेगी, लेकिन इतना शीघ्र उस बम का विस्फोट हो जाये, इसकी कल्पना उसे न थी।

आहत होकर भी उसने संयम को हाथ से न जाने दिया। सोमा के एक-एक शब्द तोलकर और फिर अपने हृदय के भावों का सन्तुलन करके उसने कहा :

"मैंने तो उन्हें बिगड़ी हालत में कभी देखा नहीं।"

"देखना तो हमें पड़ता है।" सोमा ने कहा। "आप तो केवल ऐसे व्यक्तियों से खिलवाड़ करना जानती हैं।"

सविता चोट पर चोट सह रही थी—सहती रही। उसने जीवन में बहुत आघात सहे थे और सबको आत्मसात कर लिया था।

सोमा को कुछ उत्तर दिये बिना वह अपनी जगह से उठी और इशारा किया : आइये मैं आपको एक चीज दिखाती हूँ। सोमा सविता के साथ कला-भवन के साथ वाले कमरे में गयी।

वहाँ बहुत से फ्रेम लगे चित्र रखे थे। कुछ पर फ्रेम चढ़ाये जा रहे थे। उन चित्रों में सबसे बड़ा एक चित्र सुन्दर फ्रेम में जड़ा हुआ दीवार के सहारे रखा था। सोमा ने एक सहायक से कहकर उस चित्र को सीधा करवाया।

सोमा उसे देखकर हैरान रह गयी। यह सोमा का ही बृहदाकार तैलचित्र था। अमर ने अपनी कला के सर्वश्रेष्ठ नमूनों में उसे बनाया था। अमर के हाथों बने अपने इतने भावनापूर्ण चित्र को देखकर सोमा गद्गद हो गयी।

उस चित्र में सोमा का निःसर्ग सौन्दर्य कलाकार के हाथों 'दिव्य' बन गया था। सोमा को अपने अनुपम सुन्दर होने का अन्तर्बोध पूरी तरह था किन्तु अपनी कल्पना की चरम रेखा पर भी उसने अपने इतने अलौकिक सौन्दर्य का साक्षात् नहीं किया था। अपनी भावनाओं में अपनी सुन्दरता के ऐसे अलौकिक रूप की उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की

थी। देर तक अपने ही चित्र के सामने वह खामोश ऐसी खोयी-सी खड़ी रही कि मानो उसने जगत की अनोखी चीज़ देखी हो।

सविता ने उसकी निमग्नता तोड़ते हुए कहा : "यह अमर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है।"

सोमा उसे देखकर विचित्र विचिकित्सा में पड़ गयी थी। कई शृंखलाएँ टूट रही थीं, कई बन रही थीं।

सविता ने कहा : "यही उनकी नवीनतम कृति भी है।" सोमा अब भी चुप थी।

सविता ने फिर सोमा के प्रश्न की संगति लगाकर कहना जारी रखा :

"अब तो आपको विश्वास हो गया कि मैंने उन्हें बिगाड़ने में दिलचस्पी नहीं ली।"

सोमा निरुत्तर तो थी—लेकिन एकदम उसे ध्यान आया कि वह वहाँ शंका-समाधान के लिये नहीं आयी थी, बल्कि 'अमर कहाँ है ?' इस प्रश्न का उत्तर माँगने आयी थी।

बिना भूमिका के ही उसने पूछ लिया—"अमर बाबू कहाँ हैं इस समय ?"

सविता जानती थी कि यह प्रश्न पूछा ही जाने वाला है। इसलिये वह पहले ही इसके लिये तैयार थी। उसने कहा :

"आपको नहीं मालूम क्या ?"

"नहीं।"

"तो मुझे कैसे मालूम हो सकता है मिसेज अमर।"

सविता का उत्तर बड़ा सरल-सामान्य था। लेकिन सोमा को उससे सन्तोष नहीं हुआ। उसने पूछा :

"आपकी उनसे अन्तिम भेंट कब हुई थी ?"

सविता ने इस प्रश्न का उत्तर तुरन्त नहीं दिया। पुरानी याद को ताज़ा करने की कोशिश करते हुए कहा :

"तारीख़ तो याद नहीं, मगर यह तब हुई थी, जब वह कहने आये थे कि भविष्य में मैं उनसे कभी भेंट न करूँ।"

सोमा आश्चर्य में पड़ गयी। उसे तो यही पता था कि अमर बाबू अन्त तक उसे ऐसा वचन न देने पर तुले हुए थे। आश्चर्य में सोमा ने पूछा :

"और तब से आपने कभी उनसे भेंट नहीं की ?"

"नहीं।" सविता ने कहा। "जब न मिलने का मैं वचन दे चुकी थी, तो कैसे मिलती ?"

सोमा ने प्रायः स्वगत ही किन्तु सविता को सुनाते हुए कहा :

"लेकिन मुझे तो उन्होंने कहा था कि वह मुझे ऐसा आश्वासन कभी न देंगे।"

सविता : "ज़रूर कहा होगा। और वह केवल यह जताने को कि आपका ऐसा आग्रह युक्तिसंगत नहीं था।"

◇ ◇ ◇

सोमा ने कहा : "विचित्र व्यक्ति हैं। लोग झूठे आश्वासन देकर भी मनमाना काम करते हैं और ये हैं कि काम दूसरे के मन का करते हुए भी आश्वासन नहीं देते। ऐसे आदमी तो मैंने कहीं नहीं देखे।"

सविता : "यह एक ही विचित्रता उनमें नहीं मिसेज अमर, उनमें ऐसी अनेक विचित्रताएँ हैं तभी मैं उनके गुणों पर मुग्ध थी। आपने मुझे ग़लत समझा और उन्हें भी ग़लत समझा। वे आदमी नहीं, देवता हैं।"

इन बातों से सोमा की व्याकुलता और भी बढ़ गयी। उसके

प्रश्न का उत्तर अभी तक नहीं मिला था। फिर से उसने अपना प्रश्न दोहराया।

"अमर बाबू कल से घर नहीं आये।"

"मुझे मालूम है।"

"कैसे मालूम है आपको ?"

"जाते समय उन्होंने मुझे फोन पर कहलवा दिया था।"

"मुझे क्यों नहीं कहा, मैं क्या उनकी कुछ नहीं ?"···कहने के साथ उसकी आँखों से बरसात होने लगी।

सविता ने सोमा को शान्त किया और पास पड़े सोफे पर बिठाते हुए कहा।

"आप उनकी पत्नी हैं मिसेज अमर। लेकिन पत्नी होने से ही कोई स्त्री पुरुष का सम्पूर्ण विश्वास नहीं पा जाती···विश्वास तो विश्वास से ही मिलता है। आपने भी उन पर पूरा विश्वास नहीं किया। उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखती रहीं आप ?"

सोमा : "संदेह, असन्देह की बातें बाद में भी होती रहेंगी, अभी तो बतलाइये वे हैं कहाँ ? आप उनका पता छिपा रही हैं। आपको यह अधिकार नहीं है।"···सोमा फिर उबल पड़ी।

सविता ने पूर्ण सन्तुलित मन से मुस्कराते हुए कहा : "आप फिर अधिकार की बातें करने लगीं। अधिकारों के प्रदर्शन से शासन चलते हैं, घर नहीं चलते। घर तो अधिकारों के परित्याग से ही चलते हैं।"

सोमा फिर अधीर हो गयी। तब सविता ने साफ ही कहा : "देखिये मिसेज अमर, मैं अगर उनका ठौर-ठिकाना जानती भी होऊँ तो अभी आपको न बताऊँ।"

"क्यों न बतायें ?" सोमा ने पूछा।

सविता : "इसलिये कि आप अपना अधिकार जताकर उन्हें परेशान करेंगी।"

"इससे आपको क्या ? उनकी परेशानी की चिन्ता मुझसे भी अधिक आपको है क्या ?"

"होनी तो नहीं चाहिये, लेकिन दुर्भाग्य से इस समय आपको उनकी हित-चिन्ता उतनी नहीं, जितनी उन्हें दंड देने की चिन्ता है।"

सोमा अन्त तक पूछती रही और सविता अन्त तक यही कहती रही कि उसे अमर बाबू का पता मालूम भी हो तो वह न बताये।

लेकिन विदा होने से पूर्व सविता ने सोमा को फिर अच्छी तरह समझा दिया :

"अमर बाबू तुम्हें प्रेम करते हैं। उनके हृदय में तुम्हारे अतिरिक्त किसीके लिये वह स्थान नहीं जो पत्नी का होता है।"

सविता ने यह भी कह दिया कि सोमा चिन्ता न करे। अमर बाबू कुशल-से हैं। सोमा कुछ दिन धैर्य रखेगी तो कुछ न बिगड़ेगा।

◇ ◇ ◇

सोमा जब कला-भवन से लौटी तो उसका दिल हल्का भी था, भारी भी। उसके मन में अमर के चरित्र के प्रति जो आशंका थी वह तो बिल्कुल दूर हो चुकी थी। लेकिन इस निराकरण ने उसकी व्याकुलता और भी बढ़ा दी थी। उसे अपने कृत्यों पर पछतावा हो रहा था। अपने ही कटाक्ष उसे और भी तीखे बनकर चुभने लगे थे।

अमर होता तो वह उनसे मन की बात कहकर हल्की हो लेती, उनकी अनुपस्थिति ने उसके हृदय पर पर्वत का बोझ रख दिया था।

ऐसी उलझी, थकी-सी जब वह घर आयी तो घर पर स्टूडियो के कई अधिकारी प्रतीक्षा कर रहे थे।

उन सबको उसने विदा किया।

"अमर बाबू रात को घर क्यों नहीं आये ?" यह प्रश्न पूछने को सभी आतुर थे। पति-पत्नी के बीच मनमुटाव होने पर आसपास के सभी लोग उनके मामलों में गहरी दिलचस्पी लेने लगते हैं। उनकी सहानुभूति के पीछे उनका छिपा हुआ हर्ष साफ झलकता है। सोमा ने इसकी चर्चा ही नहीं की। दबी ज़बान में निर्देशक-निर्माता ने पूछा भी तो वह टाल गयी। लेकिन अभी स्टुडियो जाकर शूटिंग करने से उसने साफ इन्कार कर दिया।

"मेरी तबियत बहुत खराब है।" यही उसका उत्तर था।

स्टूडियो के भूत तो चले गये लेकिन आँखों को कोई कैसे रोके ? अड़ोस-पड़ोस से पूछ-ताछ का ताता बँध गया।

आखिर सोमा ने दरवाजा बन्द कर लिया और भीतर चुपचाप बैठ गयी।

लेकिन अन्दर भी चैन कहाँ ?

फोन पर फोन आने लगे।

और कुछ देर में अक्षय का फोन आ गया। उसने केवल पूछ-ताछ नहीं की थी बल्कि वहाँ आकर समाधान करने का आश्वासन भी दिया।

सोमा ने कहा भी कि आप आने का कष्ट न करें। लेकिन अक्षय तो यह कहकर कि कष्ट में ही आपका हाथ न बँटा सके तो कब बँटायेंगे, आ ही गया।

उसने आते ही कहना शुरू कर दिया :

"मैंने तो आपसे कहा ही था कि उसका चलन अच्छा नहीं। कलाकारों का कोई भरोसा नहीं।...जरूर उसी औरत—क्या नाम था... सविता...उसके साथ भाग गया होगा।"

सोमा चुपचाप सुन रही थी।

अक्षय सोमा के निकट बैठकर उसका हाथ पकड़ने लगा......

सोमा ने हाथ पीछे खींच लिया।

अक्षय को आश्चर्य हुआ। उससे पहले उसने कई बार सोमा का हाथ ही हाथ में नहीं लिया, उसे उठाकर घुमाया भी था।

उसने समझा, सोमा अमर के जाने से बहुत सहमी, डरी और घबराई-सी है, इसीलिये उसके व्यवहार में असंगति आ गयी है।

सोमा को और भी आश्वस्त रखने के लिये उसने दूर से ही लेकिन बहुत अंतरंग विश्वास से कहना शुरू किया :

"सोमा ! मैं तो तभी से शंकित था, जब तूने उससे शादी की थी। स्वयं घर का खर्च न चला सकने के कारण उसने तुझे इस नारकीय जीवन में घसीटा।······

सोमा ने धीमी-सी जबान में इसका विरोध किया :

"नहीं अक्षय, अपनी सहमति से ही मैं यहाँ आयी।"

लेकिन अक्षय ने कहा : "वह प्रलोभन न देता तो तुम कभी सहमत न होतीं।

"उसे आराम की जिन्दगी बिताने का लोभ था। मेहनत तुम करो और खाये-पीये वह। सब कलाजीवी ऐसे ही होते हैं।"

"मैं भी कलाजीवी हूँ अक्षय।" सोमा ने फिर रोका।

"नहीं, तुम्हें जबर्दस्ती कलाजीवी बनाया गया। तुम्हें घर की शोभा, महलों की रानी बनना था। तुम्हारे कोमल हाथ काम करने के लिये नहीं बने थे।···और फिर उस नीच को देखो, तुम्हारी आय पर वह गुलछर्रे उड़ाता रहा। दूसरी औरतों से हँसना-खेलना करता रहा। नाम रखा कला-भवन और वहाँ विलास के सब साधन जुटाये। और अब उस सेठ की पत्नी के साथ भाग गया। जिसने सहायता की, जिसका नमक खाया उससे ही विश्वासघात किया···"

सोमा इससे आगे न सुन सकी।

ऊँचे स्वर से टोकते हुए उसने कहा : "सब झूठ है अक्षय ! सब झूठ

है ! मैं और नहीं सुनना चाहती। एक शब्द भी नहीं।"

अक्षय आश्चर्य-स्तंभित रह गया। उसे आशा थी कि वह सोमा को अमर की ओर से विरक्त कर उसके वियोग-जन्य दुख को हल्का कर सकेगा। सोमा के रुख से कुछ क्षण वह परेशानी में पड़ गया। तब उसने दूसरा पैंतरा बदला :

"सोमा ! वह खुद चला गया, यह भी अच्छा हुआ। तुम्हारा जीवन और भी गहरे गड्ढों में गिरने से बच गया। नहीं तो वह तुम्हें न जाने कितना नीचे गिरा देता।"

सोमा : "मैं आपका मतलब नहीं समझी ?"

अक्षय : "मतलब यह कि समाज की दृष्टि में तुम गिर गयीं, माता-पिता अप्रसन्न हैं, कोई साथी-संगी नहीं, घर वाले तुमसे कतराने लगे, कहीं से सच्ची सहानुभूति नहीं मिल रही तुम्हें ? अब भी समय है···।"

सोमा : "किस बात के लिये अक्षय ?"

अक्षय ने समझा सोमा अब परिस्थिति समझकर झुकने को तैयार है। उसने कहा : "समय है पिछली भूलों का प्रायश्चित्त करके नया जीवन बिताने का। मैं तुम्हारे साथ हूँ, साथ रहूँगा; मेरे साथ तुम्हारा आदर होगा, तुम्हें काम करने की जरूरत न होगी। घर की रानी बनकर राज करोगी घर में···।"

सोमा का मुख तमतमा उठा। अमर का सचाई, ईमानदारी, सच्चरित्रता के संबन्ध में जो सन्देह पैदा हुए थे वे सब उसके मन से धुल चुके थे। उसने स्पष्ट ही देख लिया कि अक्षय अमर पर झूठ दोषारोप कर उसे उलझाना चाहता है। उसने कहा :

"अक्षय, तुम्हारी बातें सुनकर मैं परेशानी में पड़ गयी हूँ। पहले भी

मैं तुमसे डरती थी लेकिन अब तो और भी डरती हूँ। तुम्हारा सब आधार झूठ है। तुम मुझसे सहानुभूति करने आये हो। मुझे कमज़ोर देखकर दया करने, हमदर्दी दिखाकर शरण में लेने की बातें कर रहे हो। अपने वैभव के नशे में तुम्हें हमारी हार ही हार दिखायी दे रही है। तुम अपने पैसे से हमें पराजित करना चाहते हो।...यह नहीं होगा, याद रखो, हममें कितनी ही गलतफहमियाँ हों, हम एक-दूसरे से अलग नहीं होंगे।"

सोमा का रुख देखकर अक्षय ने अमर के दोनों पत्र सोमा के हाथ में रख दिये।

सोमा ने उन्हें ध्यान से पढ़ा। जैसे-जैसे वह पढ़ती जाती थी उसका हृदय खिलता जाता था। उसके ओठों की हँसी बाहर फूटने को अधीर होती जाती थी। और अन्त में जब उसने पढ़ा......

तो वह पागलों की तरह अट्टहास कर उठी।

उसकी हँसी का झरना फूट पड़ा। वह बन्द ही नहीं हो रहा था।

जब वह हँस-हंसकर थक गयी और हँसने-हँसने में आँसुओं का झरना बह गया, बहकर सूख भी गया तो वह तकिये का सहारा लेकर बैठ गयी और नेत्र बन्द करके बोली :

"अक्षय ! तुम बहुत अच्छे हो। तुम ऊँचे दर्जे के आदमी हो, लेकिन वे देवता हैं। मैंने तुम्हें प्यार किया है, तुमने भी मेरी राह देखी है लेकिन अब मेरा मन उनकी आराधना करने लगा है। अक्षय, तुम अब भी कायर हो, संकीर्ण हो, उनसे तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं। तुमने दो वर्ष मेरी राह देखी, मैं दो जन्म उनकी राह देखती बिता सकती हूँ।... वे मुझे छोड़कर गये हैं, लेकिन वे आयेंगे, स्वयं आयेंगे। उनसे मेरा वियोग नहीं सहा जायगा। मैं उन्हें बुलाने नहीं जाऊँगी, वे स्वयं मेरे

द्वार पर आयेंगे।" अक्षय के देखते-देखते उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

◇ ◇ ◇

अमर जो गया तो लौटकर नहीं आया। सोमा अकेली रह गयी। उस गहन अकेलेपन में, उस निस्सीम महाशून्यता में, उसके मन में केवल एक ही बात रह-रहकर घहराने लगी, वह मजबूत नहीं बन सकी, उसका बन्धन दृढ़ नहीं हो सका। जिन जंजीरों को उसने बड़े परिश्रम से, बड़े प्रयास से बाँधना चाहा था, उन्हें अमर सहज में ही तोड़कर चला गया। अपने संग वह सब कुछ ले गया। कुछ भी तो नहीं छोड़ गया। सोमा के मन का सुख, शान्ति, ऐश्वर्य, अभिमान, सब कुछ मानो अमर के संग बँधा-बँधा चला गया। यदि कुछ रह गया तो रह गयी केवल उसकी स्मृति, जो उसकी बाँधी उन जंजीरों से कहीं अधिक शूल-वेधिनी है।

सोमा को याद आया, जिस दिन उसने अक्षय से सविता से न मिलने का वचन माँगा था और अमर ने ऐसा वचन देने से साफ इन्कार कर दिया था, उसी दिन उसके मन में भावी अनिष्ट की आशंका घनीभूत हो उठी थी; उस दिन प्रथम बार उसके मन में शंका उठी थी : "क्या अमर उसके हाथ से छूटता जा रहा है ? क्या उसे अक्षय जैसा सम्भ्रान्त नागरिक बना देने का उसका स्वप्न अधूरा रह जायेगा ? अक्षय न बनकर अमर सोमा के लिये अमर भी रहेगा या नहीं ? या केवल लोक-दृष्टि में पति ?"

काश, उसी दिन वह सँभल गयी होती।

दर्पण में पड़ते प्रतिबिम्ब की भाँति सोमा के मन में आज अपनी

कमजोरी स्पष्ट हो उठी, अमर के साथ उसका गार्हस्थिक जीवन सफल नहीं हो पाया। इसलिये नहीं कि अमर गरीब घर का बेटा था, कि उसके पास इतना पैसा न था कि वे ऐश्वर्य और धन का उपयोग कर सकते। बल्कि इसलिये कि सोमा के मन में अक्षय की परछाई बसी थी। अमर की होकर भी वह अक्षय को भूल न सकी थी। अन्तरतम के किसी अज्ञात कोने में बालसखा की जो मूर्ति अंकित थी, उसे भुलाने का प्रयत्न न कर, उसने जीवनसाथी को भी उसी साँचे में ढाल लेना चाहा था। अपने को वह बड़ा चतुर तथा व्यावहारिक मानती थी। पर वह इतना न समझ सकी कि अक्षय सिर्फ अक्षय है, और अमर केवल अमर। अक्षय मानो मधु की बूंद है, जिसके पर्दे में छिपी कालिमा ऊपर से दिखायी नहीं दे सकती। अमर घृत-सा श्वेत, स्वच्छ है। जिसके आरपार देखा जा सकता है, जो पर्दे में कुछ छिपाकर रखना नहीं जानता।

उसने मधु और घृत को मिलाकर एक कर डालना चाहा था, इसीलिये उसका जीवन इस प्रकार विषमय हो उठा है। कैसे, किस प्रकार अब इस पाप का प्रायश्चित्त हो सकेगा? कैसे, किस तरह अब उसे अमर मिल सकेगा? अमर जो केवल उसका था, उसका ही रहेगा।

इस समस्त धन तथा ऐश्वर्य का परित्याग कर देने से यदि अमर मिल सकता, तो आज वह उसके लिये भी तैयार थी। कोई यदि आकर उससे यह कहता कि अमर तभी उसका संग स्वीकार करेगा यदि वह गरीबी में ज़िन्दगी बिताना स्वीकार कर ले, तो आज उसे उसमें झिझक न थी। उसका कोमल नारी-मन आज इतना निर्बल हो उठा था कि अपने लिये सर्वस्व बार डालने वाले उस सर्वहारा पुरुष के लिये, आज वह राह की भिखारिन बनने को तैयार थी।

पर उस त्यागी का तो कहीं पता न था। उसे त्याग, विश्व के न जाने किस अज्ञात कोने में वह जा बसा था। उस निर्मोही को आज उसकी सुधि आती भी होगी या नहीं कौन जाने।

सोमा की आँखें पल-पल छलका करतीं। घड़ी-घड़ी मन में नूतन आशंकाएँ उमड़ा करतीं। फिर भी विद्रोही मन आशा का दामन न छोड़ता। न जाने कौन कहाँ से आकर चुपके से कह जाता : "व्यर्थ शंका न कर। वियोग की यह अवधि किसी न किसी तरह बिता दे। डाल का पंछी एक दिन अवश्य डाल पर लौट आयेगा।"

◇ ◇ ◇

दिन बीते, महीने बीत गये, पूना आकर भी अमर के चित्त को शांति न मिली। वह इधर-उधर, सड़कों, चौराहों और गलियों में भटकता रहता। उसे कुछ ऐसा प्रतीत होता मानो वह ऐसा पंछी है जिसके पंख टूट चुके हैं। वह उड़ना चाहता है, पर उड़ने से मजबूर है।

सोमा को छोड़ देने से, मानो उसकी कला उससे रूठ गयी है। तब क्या उसका यह कार्य अनुचित था? क्या उसे सोमा को इस प्रकार मुक्ति नहीं देनी चाहिये थी?

सोमा मुक्ति चाहती थी। उसका अन्तःकरण अक्षय के सामीप्य की माँग कर रहा था। अमर की होना चाहकर भी, वह अमर की हो न पाती थी। ऐसी दशा में उसे आजाद कर देना ही तो उचित था। फिर अमर के मन को शांति क्यों नहीं? क्यों वह सोमा को, उसकी स्मृति को भुला नहीं पाता? क्यों उसका मन सदा खोया-खोया-सा, भूला-भटका-सा रहता है? क्यों यह संसार आज उसे विषवत् विषैला प्रतीत होने

लगा है ? इस जीवन में क्या अब कभी शांति न मिल सकेगी ? उसके टूटे पंख क्या अब कभी भी पुनर्जीवित न हो सकेंगे ? अपना शेष जीवन क्या सब उसे इसी प्रकार अज्ञात रूप से, निरुद्देश्य भाव से मुर्दे की तरह जीवित रहकर बिता देना होगा ?

प्रश्नों का उत्तर न मिलता। अन्यमनस्क-सा अमर होटल की चार-पाई पर करवटें बदलता रहता। सोचता, साधना का अन्त हो गया है, क्या जीवन का अन्त कर देना भी उचित न होगा ? इस प्रकार निरुद्देश्य भाव से जीने से लाभ ही क्या है ?

वह सड़कें, वह गलियाँ और वह होटल, बस उन तक ही अमर का जीवन सीमित होकर रह गया था। होटल दुमंजिले टेढ़ी इमारत थी और उसका ऊपरी हिस्सा इस प्रकार पीछे की ओर झुका हुआ था, और निचला हिस्सा बाहर निकला था, जिस प्रकार प्रायः मराठी औरतों के दाँत बाहर निकले रहते हैं।

उसके काउन्टर पर मोटे पेट वाला सेठ एक छोटी-सी टोपी पहने बैठा रहता था। वह पूना का खान्दानी ब्राह्मण था। उसकी उस टोपी को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो उसने अपनी बड़ी-सी झब्बेदार चुटिया को सुरक्षित रखने के लिये यह टोपी रख ली है।

अमर सड़कों पर से लौटा। उस पर दृष्टि पड़ते ही सेठ ने कहा : "बड़ी देर में लौटे बाबू। आपका भोजन ठंडा हो गया था, तो मैंने दूसरी बार बनवाया है।"

अमर को भूख न थी, फिर भी भोजन तो करना ही था। कमरे में आ, उसने हल्के वस्त्र पहने और हाथ-मुँह धोकर खाने बैठा। मन कहीं और था। दृष्टि हाथ के अखबार पर टिकी थी कि सहसा वह चौंक गया।

उसकी दृष्टि गहरे टाइप में छपे एक समाचार पर पड़ी जिसमें सरकार ने कलाकारों को पिछले वर्ष की श्रेष्ठ कृतियों पर पुरस्कार दिया था।

शिल्पकार 'रेहाना' का नाम पहला और नर्तकी 'उषा मागधी' का नाम दूसरा था। वह तीसरा नाम था जिसने उसे अवाक् कर दिया था। जिसके कारण समाचार-पत्र उसके हाथ से छूट गया था। वह स्वयं उसका अपना नाम था : कलाकार अमरकुमार । श्रेष्ठ चित्र 'पनिहारिन', पुरस्कार १५००० रुपये।

अमर की भूख न जाने कहाँ से लौट आयी। उसने झटपट भोजन का कार्य सम्पन्न कर डाला। जैसे रीती गगरी जल से भर जाये, कुछ ऐसे ही उसकी मन गगरी, हर्ष और आह्लाद से ओत-प्रोत हो उठी। घंटी बजा उसने बैरे को बुलाया और थाली उठा ले जाने को कहा। साथ ही उसे इनाम भी दे डाला, पाँच रुपये का एक हरा नोट।

छोकरे को माँगने पर भी इतना बड़ा इनाम आज तक न मिला था। इस दाल-भात बेचनेवाले होटल में मिलता भी कैसे ? उसे सहसा अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। फिर एक हाथ से सलाम बजाते, वह झटपट नीचे उतर गया।

कुछ देर बाद वह एक छोटी तश्तरी में पाँच रुपये की रेजगारी और सौंफ-सुपारी लिये अमर के सम्मुख आ खड़ा हुआ।

अमर को उसके भोलेपन पर, उसकी मूर्खता पर हँसी भी आयी, दया भी आयी; सोचा, पाँच रुपये का जीवन में कितना महत्व है !

कहा : "अरे बावरे, यह तो मैंने तुझे दिया था।"

"हाँ साहब, मैं नीचू गया तो सब छोकरा लोगन और मालिक हमारा मजाक मारने लगा। तो अपन ने भी सोचा साहब ने रेजगारी मँगाने को दिया होगा।"

"नहीं, नहीं, ले जाओ, तुम यह अखबार लाये, आज हम तुमसे बहुत खुश हैं। इसीलिये दिया है। जाओ, भाग जाओ।"

छोकरा फिर सलाम बजाता हुआ पीछे हटता गया, और प्रसन्न मन नीचे जा पहुँचा। वहाँ उसने सखाराम सेठ और दूसरे नौकरों को अपना

इनाम पुनः दिखाया। कहा : "साहब, आज बहुत खुश है।"

"क्यों खुश है ?"

"कौन जाने ? पर वाकई वह बहुत खुश है। उसकी तो मानो काया ही पलट गयी है। चेहरे की रंगत बदल गयी है। पहचाना ही नहीं जाता कि यह वही पहले वाला साहब है।"

एक बोला : "अरे, रेस में जीता होगा।"

"यही बात होगी यार, बाहर से आया, तब तो हमेशा की तरह मुर्दे की चाल चल रहा था।"

इस पर इनाम पाने वाले छोकरे पांडु को तैश आ गया। उसने डपटकर कहा : "दगडूं, हमारे सेठ को मुर्दा कहा, तो अभी हड्डी-पसली एक कर दूंगा।"

"अच्छा बेटा आ तो।"

"आ न, धमकी किसे दिखाता है।"

होटल के वे आठ-दस छोकरे तुरन्त ही दो दलों में बँट गये। परन्तु कुछ लड़के यह सोचकर कि पांडु के पास आज काफी पैसा है और मुफ्त में 'हन्टरवाली' फिल्म देखी जा सकती है, उसकी ओर हो गये। दगडूं जब अकेला रह गया तो भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाये, दुबारा उबली हुई चाय को, फिर से उबालने के लिये चूल्हे के पास जा बैठा।

◇ ◇ ◇

ऊपर कमरे में अमर इधर से उधर चक्कर काट रहा था। मन ही मन सोच रहा था : "उसकी साधना सफल है। जनता उसकी सराहना करती है। अन्य कलाकार उसके औचित्य को स्वीकार करते हैं। निश्चय ही वह अन्य नवीन चित्रों का, अन्य कलाकृतियों का निर्माण कर सकता

है। जब तक उसकी साधना में बल है, उसकी कला जीवित है, तब तक उसे जीवन से निराश होने की जरूरत नहीं।

उसे अपने जीवन को सफल बनाना ही होगा। कला की अभिव्यक्ति के लिये उसे अपनी चित्तवृत्ति को सुव्यवस्थित करना ही होगा। किन्तु कैसे ?

काश, सोमा होती ! उसके सान्निध्य में, वह सदा की तरह अपनी साधना में डूब, अन्य समस्त जगत् को विस्मृत कर देता। ऐसी अनुपम कलाकृतियों का निर्माण करता कि कला-क्षेत्र में वास्तव में कुछ वृद्धि हो जाती।

पर वह तो दूर बम्बई में बैठी है।

नहीं, वह क्यों बैठी है ? मैं ही तो उसे छोड़कर इतनी दूर चला आया हूँ···यूँ वह सोचता रहा और दिन का पंछी थककर विराम लेने के लिये किसी लम्बे पेड़ की ऊँची डाल की तलाश में उड़ता रहा। फिर जाने कब विचारों में खोये-खोये उसे नींद आ गयी। तीसरे पहर की चाय लेकर पांडु ने द्वार खटखटाया तो उसकी नींद टूटी।

चाय पीकर वह स्नानगृह में गया। दिन भर की उमस और बेचैनी को जैसे धो डालने के लिये उसने बड़ी देर फव्वारे के नीचे स्नान किया। जब तक स्नान करता रहा, मुँह से सीटी बजाता रहा, और जब तक सीटी बजाता रहा उसे यह स्मरण आता रहा कि उसकी कलाकृति को जनता ने मान्यता दी है। उस मान्यता के फलस्वरूप उसे सरकार से यथेष्ट पुरस्कार मिला है।

पन्द्रह हजार की निधि कम नहीं होती। अब वह मजे में अपना स्टूडियो खोल सकेगा।

स्टूडियो की कल्पना वह तब तक करता रहा, जब तक वह कपड़े पहनकर बाहर न चला आया।

स्टूडियो में वह सोमा के उस चित्र को अवश्य रखेगा जो कला-भवन

में था। उस चित्र के मुख पर घनीभूत द्वन्द्व के भाव उसे सदा स्मरण दिलाते रहेंगे कि अकेले वही जीवन से संघर्ष नहीं कर रहा है।

सोमा की छवि उसके नयनों के आगे छा गयी और सहसा उसे लगा कि सोमा को छोड़कर यूँ पूना आकर उसने अच्छा नहीं किया। सोमा अवश्य उसके लिये चिन्तित होगी। कुछ भी हो, वह उसकी पत्नी है, वह उसका पति है। पत्नी को अरक्षित छोड़कर उसने पति की मर्यादा को ठेस पहुँचाई है।

जिस प्रकार वह सोमा को पत्नी की मर्यादा में सफल होते देखना चाहता था, क्या उसी प्रकार उसे भी अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करना चाहिये ?

आज तक उसने कभी पति के अपने अधिकार और कर्त्तव्य का पालन नहीं किया, तभी आज वह आँधी के पत्ते की तरह यूँ निरावलम्ब पूना में पड़ा है। तभी आज उसे अपने पंख टूटे-से प्रतीत होते हैं। तभी आज उसकी साधना को बल नहीं मिलता।

उसकी शक्ति, उसकी साधना, उसकी प्रेरणा, जो कुछ है, सोमा है। वह उसकी पत्नी है, उसके घर की गृहिणी है। उसके कला-मन्दिर की देवी है। उसके अभाव में उसकी साधना सफल न हो सकेगी। उसे सोमा को पाना ही होगा।

अमर ने करवट बदली। आज वह बहुत खुश था, और आज वह उदास था। अपने जीवन में ऐसा सूनापन उसने पहले कभी महसूस न किया था। यूँ कहें कि उसे ऐसा अवसर ही न मिला था, क्योंकि सुख के भी क्षणों में सोमा सदा उसके साथ रही थी। वह उसकी बनायी राह पर चलता रहा था, और उसकी खींची लकीरों से अपनी तस्वीर बनाता रहा था।

फिर भला क्यों उसे अपनी इकाई को निरखने-परखने का अवसर मिलता और क्योंकर वह जान पाता कि वह एक पुरुष है, और एक

नारी का सहारा ही उसके अधूरे जीवन को पूर्ण बना सकता है।

वह पुरुष है, एक नारी का पति है। परन्तु उसने अपने इस अधिकार का प्रयोग ही नहीं किया !

और यदि पति अपने अधिकार का उपयोग नहीं करता, तो वह पति कहलाकर भी वह पद प्राप्त नहीं कर सकता, इस विचार ने उसके हृदय को झकझोर डाला।

अधिकार का उपयोग न करने से व्यक्ति का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। सोमा के प्रति अपने दायित्व, अपने अधिकार और अपने पुरुषत्व को उसने अप्रयुक्त रखा, उसीका यह परिणाम हुआ कि उसका जीवन इस प्रकार अपूर्ण बना रहा।

अमर ने उठकर सिरहाने की खिड़की खोल दी। बत्ती बुझाकर, मन की एकाग्रता को समेटते वह सोने का यत्न करने लगा।

फिर भी न उसकी पलकें झपकीं और न उसे नींद आयी। अंधेरे में वह छत की धुंधली चमकती कड़ियों को देखता रहा और विचारों की लड़ियों को बना-बनाकर तोड़ता रहा।

वह कमरा, एक केबिन-सा था ; उसे कमरा बनाने के लिये होटल-मालिक ने बीच में लकड़ी का पार्टीशन लगा दिया था। परन्तु वह अधिक ऊंचा न था। उस ओर के निवासियों के जीवन को निरख-परख सकता था।

उधर से जब धीमी फुसफुसाहट की हल्की-सी ध्वनि आयी तो अमर की तन्द्रा को जैसे झटका-सा लगा। उसकी साँस मानो अटकने-सी लगी। उसे ध्यान आया, आज भोजन के कमरे में, उसने एक नव विवाहित दंपति को भोजन करते देखा था।

तरुणी की चूड़ियाँ खनक रही थीं, और तरुण के गहरे श्वास सुनायी दे रहे थे। अमर ने यह अनुमान लगाया कि लड़की अधिक चपल और पति अधिक सीधा है, परन्तु उसका यह अनुमान अधिक देर तक

टिक न सका जब उसने उस तरुणी के कण्ठ से पहले एक उन्मुक्त खिलखिलाहट और बाद में एक तेज़ चीख सुनी। शायद वह उसे गुदगुदा रहा था और···

अन्धेरे में अमर ने अपने उस अमर से कहा जो सोमा के प्रति पतित्व के अपने अधिकार से वंचित रहा था : "यह भी पुरुष है।"

उसे वह पुरुष अच्छा लगा।

अब लड़की की हँसी खामोश हो गयी थी। लगता था जैसे अनजाने केबिन के पटिये से उसका चूड़ियों-भरा हाथ टकरा-टकरा जा रहा है। अवश्य वह अपने दोनों हाथ पीछे किये लेटी है। और···और क्या ? वह नारी है, और वह पुरुष है, और क्या ?

मधु से मीठे ये क्षण अमर के जीवन में कभी नहीं आये, क्यों ? क्योंकि वह बुजदिल था, कायर था। एक अपराध उसका था और एक अपराध सोमा का था कि वह सदा उसे टालती रही। जब-जब उसने उसका संग चाहा···परन्तु संग क्या चाहने से मिलता है ? किसीने जैसे खिड़की में खड़े होकर उससे पूछा। कहा : "पति का अधिकार उस बीज की तरह है जिसे न सींचने पर अंकुर नहीं फूटता है, क्या अमर ने बंजर धरती पर बीज बोने का प्रयास नहीं किया है ?"

सोमा से विवाह किया, केवल इसीसे उसका पुरुषार्थ पूर्ण नहीं हो गया। किसान् धरती में बीज डालकर सन्तोष कर ले, उसकी निराई-सिंचाई न करे, तो क्या उसमें अंकुर फूट सकेगा ?

बुजदिली की आड़ में दया और ममता का जामा पहन, उसने अपने ऊपर ही अत्याचार नहीं होने दिया, सोमा को भी गलत राह पर चलने का अवसर दिया। उसके मन में किसीकी स्मृति को सजी-सँवरी रहने का समुचित मार्ग दिया।

सोमा के द्वारा निर्देशित मार्ग पर न चलकर यदि उसने अधिकार-पूर्वक उसके मन पर अपने शासन की सत्ता स्थापित कर दी होती तो उसे अक्षय के अनुरूप बनाने की बात ध्यान में न लाकर, सोमा स्वयं उसके अनुरूप बनने का प्रयत्न करती।

अपने पौरुष के पुरुषत्व से उसने नारी के नारीत्व को उभारा नहीं, अपितु उसे अकेला छोड़ दिया, इसलिये नारी और पुरुष दोनों ही पूर्ण न हो सके। दोनों ही जिन्दगी की अनजान राह पर अकेले भटकते रहे। और निश्चय ही वे तब तक भटकते रहेंगे, जब तक एक लक्ष्य, एक उद्देश्य लेकर वे कदम से कदम मिलाकर न चलेंगे।

सहसा अमर के मन में नवीन बल भर आया, मानो एक नूतन शक्ति का संचार हो गया। भोर के प्रकाश की ओर देखते उसने दृढ़ गंभीर स्वर में कहा : "नहीं, सोमा मेरी पत्नी है। मैं उसका पति हूँ। जिंदगी के नये मोड़ पर घूमकर, एक नयी राह पर, उसे मेरे संग कदम से कदम मिलाकर चलना ही होगा।"